परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2013
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

विषय सूची

आलेख

शरद कुमार यादव
भारत में जनजातीय समुदाय के लिए शिक्षा और विकास की नीतियां 1

ऋषभ कुमार मिश्र
विद्यालय स्तर पर सामाजिक विज्ञान के शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के नए आयाम 21

जितेन्द्र लोढ़ा
अध्यापक-शिक्षा के नवाचारी पदचिह्न 39

रविन्द्र कुमार पाठक
संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का औचित्य और स्वरूप 51

विवेक नाथ त्रिपाठी
उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन 77

शोध टिप्पणी / संवाद

जे.डी. सिंह एवं **रोशन लाल वर्मा**
महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका 93

शिवानी दीवान, सिद्धार्थ जैन एवं **सम्बित कु. पाढ़ी**
कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति एवं युवा पीढ़ी की उसके प्रति जागरूकता पर शिक्षा का प्रभाव 107

निशान्त राय एवं **सीमा सिंह**
सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति उत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृति 119

कंचन शर्मा
विद्यालय में अनुशासन एवं दंड की प्रकृति और स्वरूप 131

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

भारत में जनजातीय समुदाय के लिए शिक्षा और विकास की नीतियां

शरद कुमार यादव*

''वृक्ष का बीज कितनी ही उत्तम श्रेणी का हो। वह जहरीले वातावरण में पल्लवित नहीं हो सकता। अनुकूल वातावरण में छिपी हुई असीम शक्ति फूट कर बाहर निकलती है। इसी तरह से शिक्षा को यदि व्यक्ति और समाज के विकास के अनुकूल बनाया जाए तो व्यक्ति के भीतर की असीम शक्ति दिशा पा लेती है और यही वास्तव मे शिक्षा के मानवीयकरण की दिशा है''

—पॉउलो फ्रेरे

भारत को आज़ाद हुए छः दशक हो चुके हैं और इन वर्षों में भारत में बहुत से सकारात्मक परिवर्तन के साथ-साथ प्रगति के अनेक चरणों को भी छुआ है। परंतु इस सब के बावजूद आज भी अधिकांश लोग शिक्षा से वंचित हैं, एक बड़ा वर्ग आज भी भूखा सोने को विवश है। इस संदर्भ में भारत में एक वर्ग ऐसा है, जो आज के प्रगतिशील भारत में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक क्षेत्र में दयनीय रूप से पिछड़ा हुआ है और वह वर्ग है 'अनुसूचित जनजाति'। अनुसूचित जनजाति समुदाय, आज भी अनेक प्रकार की असुविधाओं, सामाजिक तिरस्कार और आर्थिक वंचनाओं से पीड़ित है। विकास की मुख्य धारा से कटा हुआ है। जब भी हम देश में विकास की बात करते हैं तो प्रायः लोग इसे आर्थिक विकास के रूप मे देखते हुए इसके सामाजिक पक्ष को विशेषतः नजरअंदाज कर देते है, लेकिन आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास किसी भी देश या समुदाय के लिए महत्वपूर्ण आयाम है, जो उसके विकास व अस्तित्व, दोनों को आधार प्रदान करता है। इससे 'मानव विकास' जैसी अवधारणा उभरती है, जिसमें शिक्षा स्तर, स्वास्थ व आय को प्रमुखता दी गयी। इस परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जनजाति समुदाय का अध्ययन – शैक्षणिक संदर्भ में करना अपरिहार्य प्रतीत होता है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसके शैक्षणिक विकास का होना अति आवश्यक है।

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
ई-मेलः sarad.kmc@gmail.com

सुभाष कश्यप लोकतंत्र के लिए शिक्षा को एक 'नैतिक उद्यम' के रूप मे देखते हैं। उनका मानना है कि ''लोकतांत्रिक समाज की पूरी इमारत परिपक्व, जागरूक, जिम्मेदार और तर्कपूर्ण तरीके से विचार करने वाले व्यक्तियों से बनती है''[1] और शिक्षा ही वह जरिया है जिसके माध्यम से ये संभव है। परंतु अनुसूचित जनजाति समुदाय, जो सदियों से अनेक सुविधाओं से हीन, शिक्षा से वंचित, कष्ट भोगी, अलगाव के शिकार और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, जिसके फलस्वरूप वह केवल शिक्षा से वंचित है, बल्कि शिक्षा प्रक्रिया की प्रत्येक गतिविधि में उसकी उपस्थिति व सहभागिता भी न के बराबर रही है। इसलिए उनका शिक्षित होना और समाज की मुख्य धारा से जुड़ना, अति आवश्यक हो जाता है। इसके लिए, संविधान निर्माताओं द्वारा विशेषत: वंचित समुदायों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाएँ, विकलांग, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग) के शैक्षणिक विकास के लिए संविधान में विशेष उपबंध, नीतियों व कार्यक्रमों का प्रावधान किया गया है।

परंतु इन सब प्रावधानों के पश्चात भी आदिवासी शैक्षिक स्तर पर कितने मजबूत हो पाए हैं? और अपनी उपस्थिति दर्ज कराने मे कितने सफल रहे हैं इसका अवलोकन करना, इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। सुविधानुसार इस लेख को 4 भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में अनुसूचित जनजाति कौन है? यह बताने की कोशिश की गई है, वहीं दूसरे भाग में इनकी शिक्षा से संबंधित संविधान में मौजूद कुछ प्रावधानों, नीतियों और कार्यक्रमों का संक्षिप्त रूप से परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त लेख का तीसरा और चौथा भाग अनुसूचित जनजातीय समुदाय की शिक्षा की वर्तमान स्थिति और उपेक्षा के कारणों पर प्रकाश डालता है।

अनुसूचित जनजाति

भारत में अनुसूचित जनजाति कौन है? इस पर अभी भी आम सहमति नहीं बन पाई है। विभिन्न विद्वानों समाजशास्त्री, मानवशास्त्री, राजनीतिक वैज्ञानिकों ने जनजातीय समुदाय को भिन्न-भिन्न आधारों और मानदंडों के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है, जो कि कुछ हद तक सही भी है क्योंकि किसी एक परिभाषा में परिभाषित करना न तो आसान है न ही परिभाषित करना उचित है। जनजाति को किसी विशेष क्षेत्र के मूलनिवासियों के रूप मे जाना जाता है। जो आदिकाल से किसी विशेष स्थान में रहते

[1] किरण, सलूजा, (2004), शिक्षा : एक विवेचन दार्शनिक एवं सामाजिक मुद्दे के परिप्रेक्ष्य में, रवि बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 135-136

चले आ रहे हैं। रोमिला थापर के शब्दों में, साधारणत: आदिवासी को, भारतीय उपमहादीप के सबसे प्राचीन वाशिन्दे के रूप में जाना जाता रहा है और ये आदिवासी समुदाय आर्यों के अतिक्रमण के समय से भी पहले से भारतीय उपमहादीप में रह रहे थे।[2] आज भी इन समुदायों ने अपनी मौलिक सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को बनाए रखा है। विशेषत: इन समुदायों को इनकी वेशभूषा एवं इनके कार्यों के प्रचलन को देखकर, लोग सामान्यत: इन्हें मूलनिवासी, वनवासी, जंगली, आदिमजन, जंगल पहाड़ में रहने वाला तथा ख़ानाबदोश कहकर संबोधित किया करते हैं। इनकी पहचान को स्पष्ट करते हुए साहित्यकार लक्ष्मण सिंह काबड़े ने अपनी कविता 'भविष्य के प्रति' में कहा है कि–

संविधान की भाषा में हम अनुसूचित जाति या जनजाति हैं
मनु की भाषा में शूद्र
कम्युनिस्टों की भाषा में शोषित
भाजपाइयों की भाषा में पिछड़े हिन्दू।
मैं पूछता हूँ।
आखिर इस देश में प्रजातंत्र में
हम क्या हैं ?
हम क्या हैं?

इस तरह से अलग-अलग नामों से इन समुदायों को संबोधित किया जाता है। समाजशास्त्री घुरे ने अपनी पुस्तक 'द एबओरिजिंस, सो कॉल्ड एंड देयर फ्युचर' में इन्हें तथाकथित आदिवासी अथवा पिछड़े हिन्दू कहा है।[3] सामान्य तौर पर जनजाति समुदाय ऐसे समुदाय को कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करते हुए एक समान संस्कृति और भाषा का प्रयोग करता है, जिसकी स्वतंत्र सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था होती है। वहीं डी.एन. मजूमदार ने कहा कि ये परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का ऐसा समूह है जिसका सामान्य नाम है, जिनके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर निवास करते हैं तथा विवाह, व्यवसाय के विषय में कुछ निषेधाज्ञाओं का पालन करते हैं व जिन्होंने आदान-प्रदान संबंधी तथा पारस्परिक कर्त्तव्य विषयक पर निश्चित व्यवस्था का विकास

[2] भेंगरा, आर., बीजोय, सी.आर., और लुईथुई, एस. (1999), 'द आदिवासीज आफ इंडिया माइनेरिटी राइट ग्रुप,' पृ. 4

[3] घुरे, जी.एस. (1993), द अबओरिजिंस, सो कॉल्ड एंड देयर फ्यूचर, पूना, पृ. 36

कर लिया हो। जनजातियों को अन्य समाजों से अलग करने वाली सबसे बड़ी विशेषता है अपने क्षेत्रों से उनके खास जुड़ाव और उनके समुदाय का प्रकृति से अंतरंग संबंध। उनके लिए अपने साधन स्रोतों के प्रबंध का अर्थ यह नहीं है कि अलग-अलग परिवारों के बीच भूमि का बंटवारा कर दिया जाए। जनजतियों की दृष्टि में कोई व्यक्ति या समुदाय तभी भूमि से जुड़ता है जब वह अपने पूर्वजों से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी जमीन पर बसा हुआ हो। जनजाति का क्षेत्र उसकी समूहिक चेतना का विस्तार होता है जिसका अपना सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व है।[4] हालांकि कई आधारों पर आदिवासी समुदायों को अन्य समुदाय से भिन्न बताया गया है, जैसे बेटेली ने आदिवासी समुदाय के आकार, पृथककरण, धर्म और जीवन-जीने के उपाय को आधार मानकर उन्हें अन्य समुदायों से भिन्न बताया है। अगर उदाहरण के तौर पर देखा जाय तो वो बताते हैं कि ज़्यादातर मानवशास्त्रियों ने जनजातीय समुदाय को बहुत ही छोटे आकार और खंडित व्यवस्था के रूप मे परिभाषित किया है। जैसा की उन्होंने लेविस का उदाहरण देकर बताया है कि सामान्य तौर पर आदिवासी समुदाय आकार में कम और स्थानिक और लौकिक रूप से उनके सामाजिक, कानूनी और राजनीतिक संबंध सीमित होते हैं और नैतिकता, धर्म और मिलते-जुलते आयामों पर अपने वैश्विक विचार का दावा करते हैं जिस पर वे अपना अधिकार मानते है, जबकि बेटेली का मानना है कि ये स्थिति अफ्रीका के बहुत से आदिवासियों के लिए हो सकती है, लेकिन भारत के आदिवासियो के संबंध में ये परिभाषा संदिग्ध है। वो कहते हैं ''भारतीय परिपेक्ष्य में कुछ मुख्य आदिवासी जैसे संथाल, गोंड और भील समान्यत: इनकी संख्या लाखों में है और व्यापक स्तर पर विस्तृत क्षेत्र मे फैले हुये हैं''[5] और ये सही भी है कि उनकी संख्या भी काफी है और रही बात नैतिकता, धर्म, संस्कृति की, अक्सर इन्हे कुछ लोग हिंदुवादी होने का और समान संस्कृति का पालन करने और इनके हिंदू होने का आरोप लगाते हैं हालांकि यह विवादित मुद्दा है जिस पर बहस जारी है।

हालाकि इस समुदाय को भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति की संज्ञा दी गयी है। भारतीय संविधान के अनुछेद 366(25) में 'अनुसूचित जनजाति' की परिभाषा ऐसी जनजातियों अथवा जनजातीय समुदाय अथवा ऐसे जनजाति समुदायों के भाग अथवा उनके भीतर के समूहों के रूप मे की गई है, जिन्हें अनुच्छेद 342 के अंतर्गत

[4] भेंगरा, आर., बीजोय, सी.आर., और लुईथुई, एस. (1999), 'द आदिवासीज आफ इंडिया माइनेरिटी राइट ग्रुप,' पृ. 4

[5] बेटेली, एंड्रे. (1974) स्टडीज़ इन अग्रेरियन स्ट्रक्चर, पृ. 61

'अनुसूचित जनजातियां' होना माना गया है।[6] संविधान के अनुछेद 342 में यह परिभाषित किया गया है कि किसी राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में अनुसूचित जनजाति कौन होगी।

अनुछेद 342(1)– राष्ट्रपति किसी राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में और जहाँ वह कोई राज्य हो तो वहाँ के राज्यपाल के साथ परामर्श करने के बाद, लोक अधिसूचना द्वारा उन जनजातियों या जनजातीय समुदाय अथवा जनजातीयों या जनजातीय समुदाय के समूहों या उनके भीतर के समूह को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए यथास्थिति उस राज्य अथवा संघ राज्य के संबंध में अनुसूचित जनजाति वर्ग समझा जाएगा।[7]

अनुच्छेद 342(2)– संसद खंड (1) के अंतर्गत जारी की गयी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जनजातीयों की सूची में किसी जनजाति अथवा जनजाति समूह के किसी भाग अथवा उनके भीतर के किसी समूह को विधि द्वारा शामिल किया जा सकता है अथवा बाहर निकाल सकते हैं, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है उसके सिवाय, उक्त अधिसूचना के अंतर्गत जारी की गयी अधिसूचना के किसी परिवर्ती अधिसूचना द्वारा बदला नहीं जायगा।[8]

अनुसूचित जनजातियों की सूची संघ राज्य /संघ राज्य क्षेत्र विशेष से संबंधित है और किसी राज्य में किसी समुदाय को यदि अनुसूचित जनजाति घोषित किया हो तो जरूरी नहीं है कि दूसरे राज्य में भी उस समुदाय के लोग अनुसूचित जनजाति के माने जायेंगे। अनुसूचित जनजाति का पता लगाने की जो जरूरी विशेषताएँ होनी चाहिए और जिनका पहली बार निर्धारण लोकुर समिति[9] द्वारा किया गया था इस प्रकार है:

1. आदिम जनजाति गुण
2. अनूठी संस्कृति
3. आम लोगों के संपर्क से कतराना
4. भौगौलिक अलगाव, और

[6] मीनिस्ट्री ऑफ लॉ एंड जस्टिस. (2007) द इंडियन कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, मीनिस्ट्री ऑफ लॉ एंड जस्टिस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली. पृ. 238

[7] उपरोक्त पृ. 211

[8] उपरोक्त

[9] जनजातीय कार्य मंत्रालय. (2011) वार्षिक रिपोर्ट 2010–2011, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.

5. पिछड़ापन

अत: सन 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 8.4 करोड़ आदिवासी निवास करते है वे कुल जनसंख्या के 8 प्रतिशत है और ये 635 आदिवासी समूहों में बंटे हुए हैं, जिनकी अपनी अलग-अलग भाषाएं एवं बोलियाँ है। गौर करने योग्य यह है कि इस आदिवासी जनसंख्या का 90 प्रतिशत से भी ज्यादा ग्रामीण हैं जबकि मात्र 8 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त देश में कुछ ऐसे भी के अंतर्गत 'अपराध ी जनजाति' के रूप मे विनिर्धारित किया गया था। उसके बाद उन्हें ख़ानाबदोश, अर्ध ख़ानाबदोश और अधिसूचित जनजातियों के रूप मे संदर्भित किया गया है। डीएनटी लगभग सभी राज्यो में पाई जाती है। अधिकांशत: अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अति पिछड़े वर्ग से संबंधित है। इनके लिए कई केन्द्रीय सरकार स्कीम कार्यक्रम निर्धारित नहीं है यद्पि स्कीमे जिन -जिन श्रेणी में आते हैं उसमे ये हैं, लेकिन इसका लाभ इन समुदायों को नहीं मिलता है। डीएनटी को अपनी पूर्व आपराधिक जनजातियों के रूप में अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण सामाजिक लांछन का सामना करना पड़ता है तथा बहुत-सी सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, जो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अति पिछड़े वर्ग को उपलब्ध हैं।

विशेषत: भारत में जनजातियों की परिकल्पना मुख्य रूप से बृहत भारतीय समाज से उनके भगौलिक और सामाजिक अलगाव के रूप मे की जाती है फलस्वरूप उनके सामाजिक रूपान्तरण के चरणों को ध्यान में नहीं रखा जाता हैं।[10] इस तरह सदियों से अलग-थलग इन समुदायों को देश की स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास किए गए परंतु देश की परियोजना से लाभान्वित होने के बजाय ये वर्ग उसकी वंचनाओं के शिकार होते गए जिसके परिणामस्वरूप इस वर्ग की न केवल उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हुई है बल्कि उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान भी ख़तरे में है और यह सर्वविदित सत्य है कि सामाजिक-आर्थिक जीवन के तमाम क्षेत्रों की तरह जनजातीय समुदाय औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में भी पिछड़ा हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य मे आदिवासी समुदाय के संबंध में उनकी शिक्षा स्थिति का मूल्यांकन करना

[10] खाखा, वर्जीनियत? (2013) 'संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातियां', योजना, वर्ष 58, अंक 1, नई दिल्ली, पृ. 7

आवश्यक प्रतीत होता है। आगे जनजाति समुदाय की शिक्षा के लिए भारत सरकार/राज्य द्वारा क्या-क्या प्रयास किए गए है; इसे बताया गया है।

भारतीय राज्य द्वारा अनुसूचित जनजाति के शैक्षणिक विकास हेतू संवैधानिक प्रावधान, नीतियां और प्रमुख कार्यक्रम

चूंकि देश मेंअनुसूचित जनजाति समुदाय सदैव ही अशिक्षा, निर्धनता, अंधविश्वास और अज्ञानता के कारण शोषण और दमन का शिकार हो रहा है, अत: इस वर्ग के कल्याण व विकास के लिए मुख्य धारा से जोड़ने हेतु भारतीय संविधान में अनेक प्रावधानों को शामिल किया गया।

जैसे– भारतीय संविधान के अनुछेद15(4)के अनुसार सरकार सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष उपबंध बना सकती है। वहीं अनुच्छेद 29 और 30 में अनुसूचित जनजाति को मुख्य धारा से जोड़ने हेतु भारतीय संविधान में अनेक प्रावधानों को शामिल किया गया। शैक्षणिक संरक्षणों के संबंध में विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है, जैसे– अनुच्छेद 29(2) यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक को केवल धर्म प्रजाति, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी एक कारण के आधार पर राज्य द्वारा संचालित अथवा राज्य से निधि प्राप्त करने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश लेने से इंकार नहीं किया जा सकता।

जैसे भारतीय सविधान के अनुछेद15(4) के अनुसार सरकार सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के उन्नति के लिए विशेष उपबंध बना सकती है। वहीं अनुच्छेद 29 और 30 में अनुसूचित जनजाति के लिए किया जा सकता है। अनुछेद 30 में इस बात का उल्लेख है कि सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धार्मिक अल्पसंख्यक हों या भाषाई अपनी पसंद की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने और उन्हें चलाने का अधिकार होगा। सरकार शिक्षा संस्थानों को अनुदान मंजूर करने में किसी भी शिक्षा संस्था के साथ इस आधार पर मतभेद नहीं करेगी की वह किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध के अधीन हैं चाहे वह धार्मिक अल्पसंख्यक हो या भाषाई।

देश के विभिन्न राज्यों में उस राज्य की राजभाषा से अलग अनुसूचित जनजाति समुदाय की अपनी भिन्न-भिन्न भाषाएं हैं, इसलिए उन्हें संविधान के अनुच्छेद 350(क) में, राज्य सरकार और स्थानीय पदाधिकारियों को भाषाई अल्पसंख्यक समुदायों के

बच्चों को प्राथमिक स्तर तक मातृभाषा में शिक्षा दिलाने के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त करने के लिए कदम उठाने के लिए निर्देश दिये गए हैं। वहीं संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 45 और 46 में राज्य द्वारा अनुसूचित जनजाति समुदाय की शिक्षा की उन्नति और आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए विशेष कदम उठाए जा सकते हैं। शिक्षा में सभी को शामिल करने के संदर्भ विशेष में 1986 की शिक्षा नीति का विश्लेषण अतिआवश्यक हो जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अंतर्गत शिक्षा में समानता लाने के इरादे से महिलाओं की शिक्षा, जनजाति, अल्पसंख्यकों के लिए सुविधाएं जुटाने, नवोदय विद्यालयों की स्थापना, समान शैक्षिक पाठ्यक्रम आदि जैसे सुझाव दिए गए। अनुसूचित जनजाति समुदाय को अन्य वर्गों के बराबर लाने लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986[11] ने निम्न लिखित कदम उठाए जाने की बात कही जो इस प्रकार से हैं:

1. अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों/इलाकों में प्राथमिक शालाएँ खोलने के काम को प्राथमिकता दी जाएगी। इन क्षेत्रों मे स्कूल भवनों के निर्माण का कार्य, शिक्षा का बजट, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, जनजातीय कल्याण योजना इत्यादि को प्राथमिकता दी जाएगी।
2. अनुसूचित जनजाति की अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता होती है और बहुदा उनकी बोलचाल की अपनी भाषाएं होती हैं। पाठ्यक्रम निर्माण में तथा शिक्षण सामाग्री तैयार कराते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि शुरुआत की अवस्था में उन्हीं की भाषा का उपयोग किया जाए, तथा ऐसा इंतजाम किया जाए ताकि अनुसूचित जनजाति समुदायों के बच्चे शुरू के कुछ वर्ष के बाद क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर सकें।
3. पढे-लिखे प्रतिभाशाली अनुसूचित जनजातिय युवकों को प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र में ही शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।
4. बड़ी तादाद में आश्रमशालाएँ और आवासीय विद्यालय खोले जायेंगे।
5. अनुसूचित जनजातियों के लिए उनके जिंदगी के तौर-तरीके और उनकी खास जरूरतों को ध्यान में रखने के लिए ऐसी प्रोत्साहन योजना तैयार की जाएगी जिनसे शिक्षा प्राप्ति में आने वाली बाधाएँ दूर हों।
6. उच्च शिक्षा के लिए दी जाने वाली छात्रवृतियों में तकनीकी और व्यावसायिक ज्ञान

[11] राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 6

को ज्यादा महत्व दिया जाएगा। सामाजिक तथा मानसिक अवरोधों को दूर करने के लिए विशेष उपचारात्मक पाठ्यचर्या एवं अन्य कार्यक्रम चलाए जाएंगे ताकि आदिवासी शिक्षार्थी सफलता से अपनी शिक्षा पूरी कर सकें।

7. आंगन बाड़ियां, अनौपचारिक शिक्षा केंद्र और प्रौढ़ शिक्षा केंद्र अनुसूचित जनजाति बहुल इलाकों में प्राथमिकता के आधार पर खोले जायेंगे।
8. आदिवासियों की समृद्ध सांस्कृतिक, अस्मिता और विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के बारे में चेतना, विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में शामिल होंगी।

आश्रम विद्यालयों की स्थापना

आश्रम स्कूल योजना का उद्देश्य अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए उनके परिचित वातावरण में आवासीय विद्यालयों की स्थापना करना है, जिससे जनजातीय विद्यार्थियों में साक्षरता दर बढ़ाई जा सके और उनकी साक्षरता दर देश के अन्य लोगों की साक्षरता दर के बराबर लाई जा सके। इस योजना में राज्य और केंद्र दोनों की आधी-आधी भागीदारी होती है जबकि केन्द्र शासित प्रदेश में पूरा खर्च केंद्र वहन करता हैं।[12]

अनुसूचित जनजाति के बालक-बालिकाओं के लिए छात्रावासों के निर्माण की योजना- इस योजना के तहत केंद्र नए छात्रावासों के निर्माण और/अथवा वर्तमान छात्रावासों के विस्तार हेतु सहायता देता है इस योजना के तहत वर्ष 2007-2008 तक छात्रावास निर्माण के लिए केंद्र और राज्य सरकार आधी-आधी लागत वहन करते हैं।

इसके अतिरिक्त अनुसूचित जनजाति के छात्रों और छात्राओं के लिए छात्रावासों के निमार्ण तथा आश्रम स्कूल जैसे आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था के साथ-साथ विशेष रूप से अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए माध्यमिक एवं माध्यमिकोत्तर छात्रवृति योजना, मेरिट का उन्नयन और मैट्रिक पश्चात छात्रवृति, कोचिंग और व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसी सुविधाओं का भी प्रावधान है।

देश में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने हेतु भारत सरकार ने कई महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को चलाया है जिनका जनजाति बहुल क्षेत्र में भी क्रियान्वन हो रहा है जिसमें वंचित समुदाय के शिक्षा स्तर को बढ़ाने हेतु विशेष बल दिया है जैसे– सर्व शिक्षा अभियान। इसकी शुरुआत सन् 2001 में की गई थी। इस योजना को राष्ट्रीय योजना के रूप में देश के सभी जिलों में प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनीकरण करने के प्रयास के लिए देश के सभी जिलों में लागू किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य 6 वर्ष से 14 वर्ष के आयु वर्ग वाले सभी बच्चों को उपयोगी एवं प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध करना है। सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्य में

बालिकाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति के छात्र-छात्राओं तथा कठिन परिस्थितियों में रह रहे छात्रों की शैक्षिक आवश्यकता पर विशेष ध्यान देने का प्रावधान किया गया है। इस योजना के अंतर्गत जिन क्षेत्रों में विद्यालय नहीं हैं वहाँ नए स्कूल खोलना, तथा अतिरिक्त कक्षा हेतु नए कमरे, शौचालय, पेयजल, रख-रखाव एवं स्कूल सुधार अनुदान के माध्यम से नए स्कूल खोलना और उनमें सुधार लाना शामिल है।

वहीं शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 जो 6 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा देने की पहल करता है, वह भी अवसरहीन समुदायों की शिक्षा के महत्व पर भी बल देता है। साथ ही यह अधिनियम ऐसे कई प्रावधानों को सम्मिलित करता है। जैसे– विद्यालय छोड़ चुके बच्चों को उनकी आयु के हिसाब से कक्षा में पुनः दाखिला दिया जाएगा, विद्यालय गठन, संरचना के साथ शिक्षण सामाग्री की भी व्यवस्था की जाएगी, सुशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था की जाएगी, अध्यापकों के शिक्षण हेतु उच्च स्तर की संस्थाओं की स्थापना होगी, आदिवासी क्षेत्रों के लिए मुख्य तौर पर ऐसी नीतियाँ बनाई जाएंगी जो शिक्षा में उच्च गुणवत्ता लाए।

दोपहर के भोजन की योजना

माध्यमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के उद्देश्य से प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की भर्ती, हाजिरी और उनके पोषण स्तर में सुधार लाने के लिए दोपहर की भोजन की योजना को लागू किया गया। सितम्बर 2004 से कक्षाओं में सभी छात्रों को दोपहर का गर्म भोजन उपलब्ध करा कर इस योजना को सर्वसुलभ बना दिया गया हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में अनुसूचित जनजाति समुदाय की शिक्षा के लिए संविधान में कई विशेष प्रावधानों को शामिल गया है परंतु यहाँ पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या संविधान में शामिल विशेष उपबंध और सरकार द्वारा चलाई गई कल्याणकारी योजनाएँ इस वंचित समुदाय की शिक्षा स्थिति में परिवर्तन ला पाई हैं? क्या ये विशेष उपबंध शिक्षा प्रक्रिया के सभी चरणों में इस वर्ग को शामिल कर पाए हैं? जब शिक्षा व्यवस्था को अनुसूचित जनजाति के संदर्भ मे जाँचने की कोशिश करते हैं तो यह विलोपन, बहिर्गमन और खानापूर्ति की कहानी बयां करती है।[13] लेख के अगले भाग में अनुसूचित जनजाति समुदाय की साक्षरता स्तर को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है।

जनजातीय समुदाय में शिक्षा की स्थिति

वर्ष 2011 की जनगणना को देखें तो हम पाते हैं कि भारत के साक्षरता के विस्तार के क्षेत्र

में उल्लेखनीय प्रगति की है। 2011 में देश की साक्षरता दर 74% तक जा पहुँचीं, वहीं 2001 के तुलना मे 2011 में पुरुष की साक्षरता दर में 6% की वृद्धि हुई जबकि महिला

तालिका-1 साक्षर एवं साक्षरता दर (पुरुष)

सूचक	साक्षर		प्रभावी साक्षरता	वृद्धि दर
	2001	2011	2001	(2001-11)
कुल जनसंख्या				
कुल	56,06,87,797	76,34,98,517	64.8	73.0
ग्रामीण	36,17,36,601	48,26,53,540	58.7	67.8
शहरी	19,89,51,196	28,08,44,977	79.9	84.1
अनुसूचित जनजाति				
कुल	3,23,86,821	5,16,35,423	47.1	59.0
ग्रामीण	2,82,94,749	4,46,31,645	45.0	56.9
शहरी	40,92,072	70,03,778	69.1	76.8

स्रोत: प्राइमरी सेंसस अब्स्ट्रैक्ट फार टोटल पापुलेशन, सेड्यूल कास्ट एंड सेड्यूल ट्राइब, 2011

तालिका-2 साक्षर एवं साक्षरता दर (महिला)

सूचक	साक्षर		प्रभावी साक्षरता	वृद्धि दर
	2001	2011	2001	(2001-11)
कुल जनसंख्या				
कुल	22,41,54,081	32,88,14,738	53.7	64.6
ग्रामीण	13,82,43,517	20,13,72,009	46.1	57.9
शहरी	8,59,10,564	12,74,42,729	72.9	79.1
अनुसूचित जनजाति				
कुल	1,18,22,216	2,15,68,511	34.8	49.4
ग्रामीण	1,01,01,983	1,83,83,774	32.4	49.9
शहरी	17,20,233	31,84,737	59.9	70.3

स्रोत: प्राइमरी सेंसस अब्स्ट्रैक्ट फार टोटल पापुलेशन, सेड्यूल कास्ट एंड सेड्यूल ट्राइब, 2011

[13] वीरभद्र नाईक, कुमारन, एंड वासवीं (2012), एजुकेशन क्वेस्चन फ्राम द पर्सपेक्टिव ऑफ आदिवासिज, पॉलिसीज एंड स्ट्रक्चर, पृ.9

साक्षरता दर में 12% की बढ़ोत्तरी हुई है। इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप मे देखा जा सकता है। (देखे तालिका–1) अगर हम देश में अनुसूचित वर्ग की साक्षरता दर की बात करें तो आज भी उनकी शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। जब अनुसूचित जनजाति समुदाय की साक्षरता दर का आकलन करते हैं तो यह पाते हैं कि 2001 में साक्षारता दर 49.1% से बढ़कर कर 2011 में 59% हो गयी है। पिछली जनगणना के आधार पर आदिवासियों का शैक्षिक प्रतिशत कुछ बढ़ा है लेकिन ये वृद्धि शैक्षिक मानक के सम्पूर्ण विकास पर नहीं झलकती है क्योंकि राष्ट्रीय शैक्षिक औसत दर की तुलना में अनुसूचित जनजाति समुदायों की शैक्षिक दर प्रतिशत अभी बहुत कम है।

उपरोक्त तालिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि आदिवासी समुदाय में शिक्षा दर मे लैंगिक अंतर भी अधिक देखने को मिलता है। 2001 मे लैंगिक अंतराल कुल 24. 4% था, वही 2011 मे घटकर कर के 19.1% हो गया है लेकिन औसत लैंगिग अंतराल से आदिवासी समाज का अंतर करें तो राष्ट्रीय औसत जो कि 19.3% है, वही आदिवासी समुदाय में 19.1 है। इससे यह प्रतीत होता है की आदिवासी समुदाय की महिलाएँ अभी शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं।

अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सकल नामांकन अनुपात

वर्ष 2009–2010 में आदिवासी बच्चों का नामांकन अनुपात प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय स्तर पर क्रमश 138.62 और 83.3 प्रतिशत है। इसके साथ ही नामांकन अनुपात के संदर्भ मे विभिन्न राज्यों में अंतर दिखाई देता है।आंकड़ा यह दर्शाता है कि माध्यमिक स्तर तक आते–आते आदिवासी बच्चों के नामांकन में बहुत अधिक कमी आ जाती है। वहीं आदिवासी छात्राओं का नामांकन स्तर भी अत्यंत ही असंतोषजनक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय जाने की उम्र में आदिवासी बच्चों का एक महत्वपूर्ण समानुपात विद्यालय से वंचित रह जाता है।

अगर सार सक्षेप में कहें तो, अनुसूचित जनजाति वर्ग के बच्चों का शिक्षा स्तर, विद्यालय में अनुसूचित जनजातीय बच्चों का प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर अनुपस्थिति दर, विद्यालय छोड़ने के संदर्भ में स्थिति आदि संतोषजनक है व ये सभी परिस्थितियाँ अनुसूचित समुदाय के बालकों की शिक्षा में शामिल किए जाने में एक अहम चुनौती के रूप में है जिसके पीछे कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण जिम्मेदार हैं जिसकी चर्चा हम अगले भाग में करेंगे। तालिका–3 में सभी राज्यों में अनुसूचित जनजातीय बालकों की शिक्षा में भागीदारी को प्रदर्शित किया गया हैं। (देखे तालिका–3)

तालिका-3

अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सकल नामांकन अनुपात, 2009-2010

क्र. सं.	राज्य/सं. शा. क्षेत्र	कक्षा I-V (6-10 वर्ष)			कक्षा VI-VIII (11-13 वर्ष)		
		लड़के	लड़कियां	कुल	लड़के	लड़कियां	कुल
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	आन्ध्र प्रदेश	118.29	118.75	118.51	86.66	84.31	85.57
2.	अरुणाचल प्रदेश	192.90	186.20	189.58	116.13	105.40	110.71
3.	असम	103.07	105.67	104.35	87.60	84.86	86.24
4.	बिहार	224.27	135.35	181.66	107.07	57.75	83.20
5.	छत्तीसगढ़	115.86	110.25	113.08	77.85	70.60	74.26
6.	गोवा	—	—	—	—	—	—
7.	गुजरात	129.38	131.44	130.13	75.13	71.72	73.49
8.	हरियाणा	—	—	—	—	—	—
9.	हिमाचल प्रदेश	140.74	136.93	138.87	153.83	151.43	152.67
10.	जम्मू एवं कश्मीर	91.69	86.32	89.13	68.72	62.46	65.78
11.	झारखण्ड	185.28	181.94	183.64	60.96	43.81	52.42
12.	कर्नाटक	110.28	106.83	108.58	96.15	90.73	93.50
13.	केरल	137.30	132.37	134.89	140.42	138.60	139.54
14.	मध्य प्रदेश	155.91	156.22	156.06	106.05	95.73	100.97
15.	महाराष्ट्र	122.09	120.65	121.40	92.54	86.82	89.81
16.	मणिपुर	190.40	160.28	175.60	88.27	71.36	77.46
17.	मेघालय	177.87	182.58	180.21	82.26	94.25	88.25
18.	मिजोरम	178.12	165.45	171.85	102.63	96.46	99.57
19.	नागालैण्ड	103.59	101.36	102.51	61.38	60.45	60.93
20.	उड़ीसा	130.40	134.74	132.48	77.73	69.84	73.91
21.	पंजाब	—	—	—	—	—	—
22.	राजस्थान	132.58	123.48	128.24	98.29	72.14	85.83
23.	सिक्किम	270.44	269.53	269.98	117.47	149.54	133.47
24.	तमिलनाडु	145.08	144.60	144.85	120.28	109.64	115.19
25.	त्रिपुरा	164.67	159.65	162.20	95.63	89.49	92.65

क्रमशः

26.	उत्तर प्रदेश	901.94	911.19	906.45	604.29	570.24	587.71
27.	उत्तराखण्ड	146.26	139.79	143.11	122.11	126.65	124.32
28.	पश्चिम बंगाल	143.64	143.55	143.60	79.40	77.90	78.68
29.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	163.07	170.95	166.80	109.80	102.38	106.20
30.	चंडीगढ़	—	—	—	—	—	—
31.	दादरा एवं नागर हवेली	100.33	101.19	100.75	94.58	83.77	89.60
32.	दमन एवं द्वीप	73.28	83.62	77.77	73.27	79.80	75.99
33.	दिल्ली	—	—	—	—	—	—
34.	लक्षद्वीप	82.09	82.48	82.29	62.39	65.90	64.11
35.	पुडुचेरी	—	—	—	—	—	—
	अखिल भारत	139.73	137.44	138.62	87.81	78.81	83.43

स्रोत : स्कूली शिक्षा की सांख्यिकी 2009–10, पृष्ठ, 51

अनुसूचित जनजातीय समुदाय के बच्चों की विद्यालय छोड़ने की दर

आज शिक्षा जगत मे किसी कारणवश विद्यालीय शिक्षा पूरी करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देने वाले बच्चों की अधिक संख्या एक गंभीर चिंता का विषय बन कर उभरी है।

तालिका–4

विद्यालय छोड़ने की दर 2010–11

	अनुसूचित जनजाति	सभी वर्ग
कक्षा I-V	35.6	27
कक्षा I-VIII	55	40.6
कक्षा I-X	70.9	49.3

स्रोत : स्कूली शिक्षा की सांख्यिकी, 2009–2010

विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों में अधिकतम संख्या अनुसूचित जनजातीय वर्ग के बच्चों की रही है, जिसे तालिका–4 में दिखाया गया है। इस तरह देश में आदिवासी बच्चे में विद्यालय छोड़ने की दर व अन्य वर्ग के बालकों की दर के मध्य अंतर को स्पष्टत:

देखा जा सकता है।

उपर्युक्त तालिका को देख कर कह सकते हैं कि आदिवासी छात्रों की विद्यालय छोड़ने की दर सामान्य वर्गों की तुलना में उच्च है। प्राथमिक शिक्षा के पश्चात विद्यालय छोड़ने की दर में वृद्धि विशेष चिंता का कारण है। पूर्व माध्यमिक स्तर पर नामांकन में अत्यधिक कमी और प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक नामांकन में अंतर में वृद्धि से यह पता चलता है की प्राथमिक स्तर पर हुई उपलब्धियों ने अभी भी शिक्षा क्षेत्र को समग्र रूप से प्रभावित नहीं किया है। विद्यालय छोड़ने की दर का प्रमुख कारण इन क्षेत्रों में व्याप्त गरीबी, शैक्षिक भेदभाव, आवागमन के साधनों का अभाव, भाषाई समस्या, पाठ्यपुस्तकों में इस समुदायों के ज्ञान को शामिल न किया जाना, शिक्षकों का असंवेदनशील रुख, स्कूली ज्ञान का बालक के अनुभवों से ताल-मेल न होना तथा शिक्षा नीतियों के क्रियान्वयन में ढिलाई व जागरूकता की कमी आदि को समझना आवश्यक हो जाता है। जिसकी अगले भाग में विस्तार रूप से वर्णित किए जाने का प्रयास किया है।

शिक्षा व्यवस्था में अनुसूचित जनजाति समुदाय के बच्चों के समक्ष चुनौतियाँ

शिक्षा व्यवस्था में अनुसूचित जनजाति की पहुंच का अभाव व शिक्षा के उच्च स्तर तक पहुँचने से पूर्व ही विद्यालय छोड़ने के अनेक कारण हैं जिसकी चर्चा इस भाग में की गई है। यहाँ न केवल यह बताने का प्रयास किया गया है कि कैसे पहुंच का मसला इस समुदाय की स्थिति को समझने के लिए जरूरी है बल्कि एक कक्षा के भीतर शिक्षक छात्र के मध्य चलने वाली प्रतिक्रिया भी अनुसूचित जनजाति के बालक को कैसे उसकी सांस्कृतिक पहचान से दूर करती है, उस पर भी चर्चा करने का प्रयास किया गया है व कई अन्य समस्याओं को भी सविस्तार बताया गया है।

पहुँच का अभाव

भारतीय समाज में पिछड़े वर्गों में शामिल अनुसूचित जाति व जनजाति दोनों का शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ेपन का कारण पहुंच का अभाव है परंतु ये पहुंच का मसला दोनों के लिए अलग-अलग है जहां दलित वर्ग सामाजिक बहिष्कार के कारण सदियों से अज्ञानता का शिकार रहा वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जनजातियां जिन क्षेत्रों में रहती आई हैं, वहाँ विकास की रफ्तार धीमी रही है या सरल शब्दों में कहें तो ये क्षेत्र ऐसे हैं जहां सरलता से नहीं पहुंचा जा सकता जैसा कि मेधा पाटेकर का कहना है कि–

> *इन आदिवासी बच्चों के पहाड़ी जीवन का प्राकृतिक परिवेश ऐसा है कि इन्हें अक्सर पहाड़ी चढ़कर ही शाला में पहुंचना पड़ता है। इसके अलावा अपने*

निजी प्रयोजन के लिए भी और हर रोज दो बार छोटी-बड़ी टेकड़ी (पहाड़ी) उतरकर नदी में नहाने और पानी लाने जाना होता है। इसके अलावा दो नहीं तीन या चार बार नाश्ता-खाना करते दिन गुजरता है। पालक अपने बच्चे को प्राथमिक शाला के बाद माध्यमिक शाला के लिए दूर भेजना पसंद नहीं करते, दूसरी और बच्चे भी बंद कमरों और ऊँची इमारतों वाले शिक्षण संस्थानों में उच्च शिक्षा के लिए जाना पसंद नहीं करते। [14]

इस प्रकार जिन स्थानों पर ये लोग रहते हैं वहाँ पास में विद्यालयों, कालेजों व प्रशिक्षण संस्थानों का अभाव भी एक बड़ा कारण है जो इस समुदाय के बालकों की शिक्षा में पहुंच को रोकता है।

आधारभूत सुविधाओं का अभाव

सामान्य जनसंख्या की तुलना में अगर देखें तो आदिवासी बच्चों की विद्यालय तक पहुँच बहुत ही कम है और इन क्षेत्रों में स्कूली सुविधाएँ भी बहुत ही सीमित मात्रा में हैं, जिसका एक प्रमुख कारण विद्यालयों की गुणवत्ता और अपर्याप्त सुलभता। सुविधाओं की गुणवत्ता के संदर्भ में ग्रामीण विद्यालय विशेषतया आदिवासी क्षेत्रों में बने विद्यालयों का प्रदर्शन स्तर सोचनीय है। यदि इच्छा से नहीं तो भूल चूक से ही ग्रामीण विद्यालय ''सर्वसुलभ'' विद्यालय की तरह सेवा करते हैं। मुख्यत: निम्न जाति और जन जाति के बालकों के लिए बने विद्यालयो की स्थिति तो और भी खराब है।[15]

इन क्षेत्रों में संरचनात्मक सुविधाओं की अपर्याप्तता के अतिरिक्त शिक्षकों की अपर्याप्तता भी एक गंभीर चुनौती के रूप में सामने आयी है। इस तरह अपर्याप्त शिक्षक संख्या और शिक्षण प्रक्रिया में बड़ा छात्र-शिक्षक अनुपात जैसी समस्याएँ के कारण भी आदिवासी समुदाय को शिक्षा के क्षेत्र में गंभीर मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है, जो कि बेहद निराशाजनक है। दूर दराज के इलाके विशेषत: जनजातीय इलाकों में स्थित विद्यालयों की एक समान सी विशेषता है, साल मे अधिकतर समय और कभी-कभी तो वर्षों तक बंद रहने वाले और केवल कागजी अस्तित्व वाले विद्यालयों का भी व्यौरा है।[16]

---

[14] पाटेकर, मेधा. (2011) 'समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति' भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 31, अंक 3. पृ. 5-25

[15] एनसीईआरटी (2007) राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, अनुसूचितजाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएँ, नई दिल्ली.

[16] उपरोक्त पृ. 21

समान्यत: इन क्षेत्रों में शिक्षण अधिगम सामाग्री जैसे श्यामपट, चाक, पाठ्यपुस्तकों और अन्य पाठ्यसामाग्री, प्रयोगशाला, उपकरण, निर्देशन सहायक सामग्री की आपूर्ति में अधिकतर या तो बिलकुल भी नहीं रहती है या फिर उसकी गुणवत्ता खराब होती है और अधिगम का न्यून स्तर होता है।

नीतियों के क्रियान्वयन में ढिलाई

अभी तक हमने देखा कि समय-समय पर सरकार द्वारा अनेक नीतियों का निर्माण किया गया परंतु परिणाम उनके अनुरूप नहीं आ सके। इसका एक कारण यह है कि सरकार द्वारा वंचित वर्ग के शैक्षिक स्तर को बढ़ाने के लिए जो भी नीतियाँ और योजनाएं बनाई उसका सही ढंग से क्रियान्वन नहीं हुआ, जिसके कारण इन समुदायों का शिक्षा स्तर और भी नीचे गिरता गया व निरीक्षण तकनीकी अभाव के फलस्वरूप, जो सकारात्मक भेदभाव की नीतियां जो इनको एक स्तर तक लाने के लिए किया गया, उसके लाभ की क्षमता को सीमित कर दिया। वहीं हम यह भी देखते हैं कि आदिवासी क्षेत्रों में विद्यालयों की संरचनात्मक सुविधाएं अपर्याप्त और विशेषत: संकटजनक स्थिति में हैं। गैर-हवादार भवन, जीर्णशीर्ण अवस्था में हैं जिन्हें ठीक करवाने की सख्त आवश्यकता है। मूलभूत सुविधाएँ– मेज, कुर्सी, शिक्षण उपकरण हैं ही नहीं, अगर हैं भी तो दयनीय स्थिति में हैं। इस प्रकार की खराब और अनियमित कार्य प्रणाली के विद्यालयों की संख्या बहुतायत में है।[17]

पाठ्यचर्या में सम्पूर्ण भागीदारी का न होना

इन सब समस्याओं के अतिरिक्त आदिवासी बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा में पाठ्यचर्या की भी समस्या एक गंभीर समस्या को प्रदर्शित करती है। अत: इस परिप्रेक्ष्य में पाठ्यचर्या की समीक्षा करना जरूरी प्रतीत होता है। जैसा कि माइकल एपल का कहना है कि ज्ञान के चुनाव, पाठचर्या और आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के नियंत्रण और प्रबंध के बीच में एक स्पष्ट कड़ी/संबंध है।[18] पाठ्यचर्या में आदिवासियों के गौरवशाली इतिहास और उनके सांस्कृतिक अधिकारों और ज्ञान को प्रमुखता नहीं दी गयी है। कृष्ण कुमार ने किसी विशेष किस्म के ज्ञान को पाठ्यक्रम में महत्व देने के पीछे यह कारण मानते हैं कि जिन तबकों की शिक्षा तक पहुँच नहीं होती है, उनके द्वारा ज्ञान उत्पादित और संरक्षित ज्ञान स्कूल में पढ़ाये जाने योग्य नहीं समझा जाता है, जैसे– मध्यप्रदेश में स्थित बैगा जनजाति के उदाहरण स्वरूप वे कहते हैं कि दुनिया की रचना के संबंध में बैगा लोगों के मिथक को महत्वपूर्ण शैक्षिक ज्ञान भला कौन मानेगा? उसी तरह भारत के मध्य भागों के जंगलों

[17] उपरोक्त पृ. 20

[18] उपरोक्त पृ. 23

से अपने प्राचीन परिचय के आधार पर बैगा लोगों ने जानवरों के व्यवहार का जो ज्ञान हासिल किया है उसे शायद ही शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण ज्ञान माना जाएगा। हिंदुस्तान के बच्चों के लिए शिक्षा की दृष्टि से मान्य ज्ञान में बैगाओं के पौराणिक ज्ञान को जगह दी जाए या नहीं, यह सवाल इस बात से जुड़ा है की खुद बैगा समुदाय की शिक्षा तक कितनी पहुंच है और शिक्षा में उनकी कितनी उपलब्धि रही है।[19] इसके साथ अन्य स्थान पर कृष्ण कुमार ने शिक्षा पाठ्यचर्या को प्रभावित करने मे प्रभु वर्ग की भूमिका का विश्लेषण करते हुए कहा है कि ''समाज में जिन तबकों का वर्चस्व है वे शिक्षा और विशेषकर पाठ्यक्रम का इस्तेमाल यह सुनिश्चित करने में कर सकते हैं कि उनकी आवाजों के अलावा बाकी सभी आवाजें इतनी नाकाफी, कमजोर या बिगड़े रूप में आए कि उनकी अपील नकारात्मक हो जाए और पाठ्यक्रम के विमर्श में उनके लिए जगह न रह जाए''।[20] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पाठ्यपुस्तकों में इनके अनुभवों व ज्ञान को शामिल न करने के कारण भी ये वर्ग स्कूली ज्ञान को अपने निजी अनुभवों से अलग-थलग महसूस करते हैं व अलगाव की स्थिति में आदिवासियों को अपनी भाषा में शिक्षा न देने के कारण उनके ज्ञान और सांसारिक दृष्टि की अवमानना होती है। यह स्थिति बच्चे के आत्ममूल्यों का विनाश और बाद के वर्षों में सफल अधिगम की संभावना को घटाती है।[21]

इसी प्रकार 'छात्र क्या सीखता है', यह सवाल स्कूल की पढ़ाई के संदर्भ में इतना अहम नहीं है जितना यह सवाल कि 'कौन सीखता है और कौन सीख नहीं पाता हैं'। पाठ्यक्रम की नीति और अध्यापकों के प्रशिक्षण में यह स्वीकार नहीं किया जाता है कि किसी भी कक्षा में शामिल छात्रों की आलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि अध्यापक व छात्रों के बीच परस्पर क्रिया और इस क्रिया से जन्मे अर्थों को आकार देती है। एक अध्यापक द्वारा किसी पाठ को जब इतिहास के तथ्यों के पुलिंदों के रूप में प्रस्तुत किया जाता हैं तो इस बात का कोई महत्व नहीं रह जाता कि ''छात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि क्या है और ये पृष्ठभूमि किन दृष्टिकोणों को आकार देती है''।[22] आदिवासी क्षेत्रों में इन सब समस्याओं के अतिरिक्त विद्यालय में अक्सर आदिवासी बच्चों के साथ भेदभाव किया जाता है क्योंकि उन स्कूलों में जो गैर-आदिवासी शिक्षक हैं उनके द्वारा अक्सर

[19] कुमार, कृष्ण.(1998) शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली.
[20] उपरोक्त पृ. 22
[21] एन.सी.ई.आर.टी. पृ. 25
[22] कुमार, कृष्ण.(1998) शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली.
[23] उपरोक्त

आदिवासी छात्रों को भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। जैसे कृष्ण कुमार कहते हैं– ''अध्यापक व छात्रों के बीच होने वाली शैक्षणिक अन्त:क्रिया में पाठ मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। पाठ किसी दृष्टिकोण को 'महत्व' देता है लेकिन अंत में अध्यापक ही किसी पाठ और उसमें निहित ज्ञान के अर्थ को आकार देता है।''[23]

निष्कर्ष

सारांशत: हम कह सकते हैं कि अनुसूचित जनजाति समुदाय में शिक्षा की स्थिति बहुत ही दयनीय अवस्था में है, जो एक चिंता का विषय है। जहाँ तक सम्भव हो आदिवासी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में देना जरूरी है। उन्हें ऐसे शिक्षक उपलब्ध कराना जो उनकी भाषा जाने, जिससे आदिवासी बच्चे उनके साथ सहज अनुभव कर पायें और जो उनकी जीवन–शैली को जाने, उनकी इज्ज़त करे न कि उन्हें हेय दृष्टि से देखे। आदिवासी बच्चो की शिक्षा के लिए कुशल शिक्षक प्रशिक्षिण न होने के कारण भी आदिवासी शिक्षा की समस्यायों को सुलझाने में असफल होते हैं क्योंकि वे आदिवासी संस्कृति और जीवन से अनभिज्ञ होते हैं। शिक्षक आदिवासियों की भाषा को ठीक से नहीं समझने के कारण उनके बीच सही तरीके से समायोजन नहीं बना पाता है। आदिवासियों की शिक्षा का स्वरूप उनके समाज की पृष्ठभूमि को केंद्रित करता हुआ हो। पाठ्यक्रम ऐसा हो कि आदिवासी आधुनिक शिक्षा के साथ–साथ अपने परंपरागत मूल्यों को भी ग्रहण करे क्योंकि भारत एक राष्ट्र है परंतु भारतीय समाज न केवल विविधताओं से बल्कि कई प्रकार की असमानताओं से परिपूर्ण है। ऐसे में शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तक के माध्यम से निकला पाठ्यक्रम नहीं हो सकती है। समाज प्रत्येक कालखंड में अपनी औपचारिक ही नहीं अनौपचारिक शिक्षा में भी बदलाव लाता रहता है। हर तबके की सोच में बुनियादी फर्क रहना स्वाभाविक है और उनके बदलाव की गति भी समान नहीं हो सकती है। इस स्थिति में शिक्षा के स्वरूप, पद्धति, संरचना एवं संदेश को लचीला रखना बहुत ही जरूरी होता है। लेकिन यदि शिक्षा में निहित मूल्यों, शिक्षण पद्धति एवं शिक्षा प्रसार कार्यक्रम में समानता नहीं होगी तो राष्ट्र की अखंडता और एकीकरण ही खतरे में पड़ सकता है। इसी दोहरी चुनौती को समझते हुये हमें अपनी शिक्षा संबंधी भूमिका स्पष्ट करनी होगी।[24]

अनुसूचित जनजाति वर्ग में शिक्षा के प्रति रुझान तभी बढ़ सकता है जब शिक्षा का स्वरूप निर्धारित करते समय जनजाति समाज की पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण, इस प्रकार से हो ताकि जनजाति समुदाय का बालक शिक्षा के साथ–साथ अपने परंपरागत मूल्यों को कायम रख सके क्योंकि विद्यालय के साथ उनका समायोजन

[24] उपरोक्त

न होने के कारण इन बच्चों में स्कूल जाने की रुचि कम होती है। आदिवासी बच्चे अपनी अलग भाषा व सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण स्कूली जीवन से जुड़ने में असहज महसूस करते हैं। आज यह भी जरूरी है कि इन क्षेत्रों में इन वंचित बच्चों के लिए लिखने पढ़ने और सीखने को एक आनंदप्रद अनुभव बनाया जाए और ऐसा करने के लिए यह जरूरी है कि विशेष रूप से दूर-दराज के जनजातीय क्षेत्रों के स्कूलों में दृश्य माध्यमों अर्थात दूरदर्शन फिल्मों आदि के जरिये दूरस्थ शिक्षा पद्धति की सहायता भी करने की जरूरत है। अत: इन आदिवासी बच्चों के शिक्षा स्तर को बढ़ाने के लिए हमें इन विचारों पर चिन्तन करना अत्यंत जरूरी है।

संदर्भ

कुमार, कृष्ण.(1998) *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व,* ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली

किरण, सलूजा. (2004) *शिक्षा: एक विवेचन दार्शनिक एवं सामाजिक मुद्दो के परिपेक्ष्य में,* रवि बुक्स, नई दिल्ली

भेंगरा, आर, बीजोय, सी. आर., एंडलुईथुई, एस. (1999). *'द आदिवासिज ऑफ इंडिया' माइनोर्टी राइट ग्रुप*

घुरे, जी. एस. (1943) *द एबओरिजिंस- ''द सो-कूल्ड-एंड देयर फ्युचर,* पूना

बेटेली,ऐन्ड्रे. (1974) *स्टडीज़ इन अग्रेरियन स्ट्रक्चर*

मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एंड जस्टिस. (2007) *द इंडियन कान्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया,* मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एंड जस्टिस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2010) *स्कूली शिक्षा की सांख्यिकी 2009-2010 मॉनिटरिंग एंड सांख्यिकी ब्यूरो,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2010) स्कूली शिक्षा की सांख्यिकी 2010-2011, मॉनिटरिंग एंड सांख्यिकी ब्यूरो, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

भारत सरकार(2011) *भारत की जनगणना 2011,* भारत सरकार, नई दिल्ली

जनजातीय कार्य मंत्रालय. (2011) *वार्षिक रिपोर्ट 2010-2011,* जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

खाखा, वर्जीनियस. (2013) *'संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजतियां',* योजना, वर्ष. 58, अंक-1. नई दिल्ली

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

वीरभद्रनाईका, कुमारन एंड वासवी. (2012) *'द एजुकेशन क्वेश्चन फ्राम द पर्सपेक्टिव ऑफ आदिवासिज पोलिसिज एंड स्ट्रक्चर'*

पाटेकर, मेधा. (2011) *'समाजीकरण बनाम शिक्षा की राजनीति'* भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 31, अंक 3. पृ. 5-25 *परिप्रेक्ष्य*

एनसीईआरटी (2007) *राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र,* अनुसूचितजाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएँ, नई दिल्ली.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

विद्यालय स्तर पर सामाजिक विज्ञान के शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के नए आयाम

ऋषभ कुमार मिश्र*

सारांश

इस लेख में स्कूल स्तर पर सामाजिक विज्ञान को एक सशक्त विषय मानते हुए इसके बदलते परिदृश्य का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त दिल्ली के एक सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में किए गए अध्ययन के आधार पर सामाजिक विज्ञान की कक्षा में सीखने-सीखाने की प्रक्रिया को विश्लेषित किया गया है। सामाजिक विज्ञान के प्रचलित शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि शिक्षक विषय को इसके नए प्रासंगिक रूप में नहीं आत्मसात कर पा रहे हैं। शिक्षकों की शिक्षाशास्त्रीय मान्यताएँ अधिगमकर्ता के प्रति 'हीनता प्रतिरूप' की अनुगामी है। यह शोधकार्य, हीनता के प्रतिरूप द्वारा निर्देशित सीखने-सीखाने की प्रक्रिया का विकल्प-सहभागिता, संवाद और कतृत्व (एजेंसी) के बोध पर आधारित शिक्षा शास्त्र में देखता है। इसी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में शोधकर्ता द्वारा सामाजिक और राजनीतिक जीवन-विषय से चुनी गई अवधारणाओं को पढ़ाया गया। इस शिक्षण कार्य के गहन विश्लेषण को इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

विगत दशक में स्कूली शिक्षा और समाज के बीच की विलगता को समाप्त करने के लिए दो कारगर कदम उठाए गए। एक ओर शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा प्रत्येक बच्चे के औपचारिक शिक्षा के अवसर को सुनिश्चित किया गया तो दूसरी ओर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 के द्वारा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को शिक्षक केन्द्रित, शिक्षक नियंत्रित, पाठ्यपुस्तक अनुगामी के पारम्परिक ढाँचे से मुक्त करने का विकल्प सुझाया गया। पहले के द्वारा जहाँ स्कूल को, बच्चे की दुनिया तक लाया गया वहीं दूसरे के द्वारा

* शोध छात्र, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

बाहर की दुनिया और स्कूल के बीच की प्रच्छन्न किन्तु मजबूत दीवार को कमजोर किया गया। स्कूल को सीखने-सीखाने की ऐसी संस्थागत इकाई के रूप में देखा गया, जहाँ सभी बालक और बालिकाएँ, अपने विविधता भरे अनुभवों के साथ आते हैं, और स्कूल के परिवेश में इन अनुभवों की पुनर्संरचना व रूपान्तरण द्वारा ज्ञान का निर्माण करते हैं। इन प्रगतिशील प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में यह लेख सामाजिक विज्ञान की शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं को विश्लेषण के दायरे में लाता है।

स्कूल स्तर पर सामाजिक विज्ञान का बदलता परिदृश्य

सामाजिक विज्ञान विषय की अपनी ही विडम्बना है। प्राय: इसे विज्ञान और गणित जैसे विषयों की तुलना में कम उपयोगी माना जाता है। इसकी 'लोकप्रिय छवि' ऐसे विषय की है, जो परस्पर असंबंधित सूचनाओं का ढेर है, जिसकी उपयोगिता केवल परीक्षा पास करने तक ही है (जॉर्ज और मदान, 2009)। जबकि सामाजिक विज्ञान स्कूली पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग है, जिसकी विषयवस्तु समाज– उसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, स्थानिक व भौतिक पक्षों को समाहित करती है। सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु के 'समाज' से जुड़े होने के कारण इस विषय के शिक्षण अनुभवों द्वारा, सीखनेवालों को ऐसा माहौल देता हैं, जहाँ प्रचलित मान्यताओं, परम्पराओं और प्रक्रियाओं को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा जा सकता है (विनेबर्ग और मार्टिन, 2004)। सामाजिक विज्ञान के शिक्षाशास्त्र के द्वारा अधिगमकर्त्ता समग्रता के साथ प्रासंगिक विषयों के विविध पक्षों के प्रति सचेत और संलग्न होता है (ओगले क्लैम्प और मैकब्रिडे, 2007)। समाज की यथास्थिति के निरूपण और विश्लेषण द्वारा यह सामाजिक रूपान्तरण के लिए आधार देता है (गे, 1997)। इसके साथ-साथ सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु अतिसंवेदनशील भी है। यह 'बहुसंस्कृति' की विशेषता को 'अन्य संस्कृति' के विभेद में बदल सकती है (हाइन, 1995)। इस प्रक्रिया को हाइन (1995) ने विवेचित करते हुए बताया है कि जब बहुसंस्कृति वाले समाज में स्थापित छात्र/छात्राओं को एकल और प्रभावी संस्कृति के माहौल में ज्ञान का निर्माण का अवसर मिलता है तो उनकी समझ व्यापक न होकर प्रभावी संस्कृति के प्रतिरूप का उत्पादन हो जाती है। ऐसी दशा में सीखनेवाले 'बहुसंस्कृति' की विशेषता को 'अन्य संस्कृति' के विभेद के रूप में सम्प्रत्ययीकृत करते हैं। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यसामग्री (टेक्स्ट) पर ही टिप्पणी करते हुए सीगल (2004), का मानना है कि जितना महत्वपूर्ण यह विचार करना है कि टेक्स्ट क्या कहता है? और कैसे कहता है,

उतना ही यह विचार करना भी महत्वपूर्ण यह है कि वह किसके विषय में मौन है? किसी खास समूह की मौजूदगी या गैर-मौजूदगी का ज्ञान निर्माण पर दूरगामी प्रभाव होता है। पार्कर (2010) का मत है कि सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में 'आदर्श' के दबाव में 'यथार्थ' को बाहर रखने पर यह विषय सीखने वाले को न तो चिंतन का ठोस आधार देता है और न ही कक्षा के बाहर की सामाजिक परिस्थितियों को देखने की दृष्टि। ब्रोफी और एल्मैन (2002) ने अपने शोध कार्य द्वारा यह दिखाया है कि बच्चों में सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं का विकास 'सार्वभौमिक' न होकर 'वैकल्पिक' अवधारणाओं से युक्त होता है।

एन.सी.एफ., 2005 ने सामाजिक विज्ञान के इन संवेदनशील पक्षों को संज्ञान में रखते हुए विज्ञान और गणित जैसे विषयों की तरह ही इसे एक अपरिहार्य स्कूली विषय माना गया है। इस दस्तावेज ने न्याय आधारित, समतामूलक, और शांतिमय समाज की स्थापना के लिए आवश्यक ज्ञान के स्रोत के रूप में सामाजिक विज्ञान को देखा है :

> *''सामाजिक विज्ञान की अनुभूतियाँ और ज्ञान, एक समतामूलक और शांतिमूलक समाज का ज्ञान-आधार तैयार करने की दिशा में अपरिहार्य है। सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का लक्ष्य जानी-पहचानी सामाजिक सच्चाई की समीक्षात्मक जाँच करते हुए विद्यार्थियों में आलोचनात्मक जागरूकता का संवर्धन होना चाहिए।''*

एन.सी.एफ., 2005 ने यह स्थापित किया है कि सामाजिक विज्ञान, विज्ञान के विषयों की तरह वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त है, जिसकी अपनी अध्ययन पद्धति है। सामाजिक विज्ञान के अध्ययन की केन्द्रीय विषयवस्तु 'समाज' के लिए यह 'बहुलतावाद', 'परस्पर निर्भर' जैसे विशेषणों का प्रयोग करता है। 'ताकतवर सामाजिक शक्तियों' से खतरे को भाँपते हुए स्वतंत्रता, विश्वास, परस्पर सम्मान और विविधता के प्रति आदर जैसे मूल्यों को सुदृढ़ करने का सुझाव देता है।

इसी परिप्रेक्ष्य के अनुरूप इतिहास, भूगोल और राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र आदि विषयों के संयोजन से सामाजिक विज्ञान का ढाँचा खड़ा किया गया। 'हमारा अतीत, 'हमारा पर्यावरण' और 'सामाजिक और राजनीतिक जीवन', के नए कलेवर में सामाजिक विज्ञान को प्रस्तुत किया गया है। इस ढाँचे में इतिहास शिक्षण को सामाजिक प्रक्रियाओं में सततता और बदलाव के प्रति समझ के विकास का माध्यम माना गया। सामाजिक और

राजनीतिक जीवन शिक्षण को 'निष्ठावान' और 'आज्ञाकारी' नागरिक बनने के बजाय 'आलोचनात्मक' नागरिकता के विकास का दायित्व दिया गया। जेण्डर, विभेद और मानवाधिकारों जैसे समसामयिक सामाजिक विमर्शों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया। पर्यावरण और विकास से जुड़े मुद्दों को भूगोल की अध्ययन सामग्री बनाया गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि एन.सी.एफ., 2005 में सामाजिक विज्ञान एक सशक्त विषय है जो छात्र/छात्राओं को सामाजिक सरोकारों के साथ विमर्श में संलग्न करता है। यह छात्र/छात्राओं को न केवल आदर्श स्थिति के विषय में बताता है बल्कि उन्हें यथार्थ परिस्थितियों से भी अवगत कराने का लक्ष्य भी रखता है। इस प्रकार से उन्हें सामाजिक यथार्थ के वास्तविक रूप का विश्लेषण करते हुए आदर्श मूल्यों की ओर अग्रसर होने का मौका देता है। सामाजिक विज्ञान के ज्ञान का निर्माण स्मरण के बजाय मनन पर आधारित है। यह ज्ञान परिवेश और सन्दर्भ में मानव समूहों के व्यवहार और क्रियाकलाप को समझने के लिए आलोचनात्मक दृष्टि देता है जिसके द्वारा तथ्यों को सत्य के रूप में स्वीकारने के बजाय उसके स्रोत, व्याख्या और व्याख्या की अन्तर्निहित मान्यताओं के मूल्यांकन करने की क्षमता का विकास होता है (बत्रा, 2010)। उल्लेखनीय है कि इस नए अवतरण में सामाजिक विज्ञान का कक्षा में परावर्तन शिक्षक की शिक्षाशास्त्रीय नीतियों द्वारा होता है। पाठ्यक्रम के क्रियाकरण में शिक्षाशास्त्रीय अभिकर्त्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका सर्वाधिक महत्व की है। उसकी शिक्षण नीतियाँ ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के स्वरूप को तय करती हैं और दिशा देती हैं। अत: शोध कार्य के प्रथम चरण में सामाजिक विज्ञान शिक्षक के शिक्षाशास्त्रीय विश्वास की पड़ताल की गई। इसके विश्लेषण के आधार पर, एन.सी.एफ., 2005 के द्वारा सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए प्रस्तावित प्रकृतिगत व ज्ञानमीमांसीय बदलाव के अनुरूप सामाजिक व राजनीतिक जीवन के शिक्षण का निर्णय लिया गया। शोधकर्त्ता द्वारा सीखने-सिखाने के सामाजिक-सांस्कृतिक उपागम के अनुरूप शिक्षाशास्त्रीय परिवेश का विकास करते हुए पढ़ाया गया। सामाजिक विज्ञान की कक्षा में सीखने-सिखाने के इस अनुभव का वर्णन इस लेख में विस्तार से किया गया है।

शोध की प्रक्रिया और विधि

यह शोध कार्य दिल्ली के सरोजनी नगर क्षेत्र में स्थित एक सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में किया गया है। शोध कार्य के प्रथम चरण में उच्च प्राथमिक कक्षा में पढ़ाने वाले दो शिक्षकों का असंरचित साक्षात्कार द्वारा उनके शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास को

जाना गया। अगले चरण में कक्षा 6 में सामाजिक और राजनीतिक जीवन की चयनित अवधारणाओं को मेरे द्वारा पढ़ाया गया। पढ़ाई गई इकाईयाँ थीं– विविधता और विभेद, ग्राम पंचायत तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था। यह अध्ययन का मुख्य चरण था। शिक्षण का कार्य 24 भिन्न कार्य दिवसों में पूरा किया गया। समंक के रूप में कक्षा 6 के 35 छात्र/छात्राओं को चुना गया जिनमें 26 लड़के और 9 लड़कियाँ थीं। अधिकांश छात्र/छात्राओं का परिवार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, बिहार और राजस्थान आदि राज्यों से प्रवसन करके दिल्ली आया है। इन छात्र/छात्राओं के अभिभावक दैनिक श्रमिक, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, रेहड़ी आदि लगाने वाले हैं। इन बच्चों की माताएँ या तो कुटीर उद्योग में संलग्न हैं या दूसरों के घरों में घरेलू कार्य करती हैं। सभी छात्र/छात्राएँ सरोजनी नगर के आसपास की सघन बस्तियों से आते हैं। कक्षा चर्चा को ऑडियो रिकॉर्ड किया गया। इसके अनुलेखन को समंक के रूप में विश्लेषित किया गया।

प्रचलित शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास

प्रचलित शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास को समझने के लिए विद्यालय की उच्च प्राथमिक कक्षा में पढ़ाने वाले दो शिक्षकों का असंरचित साक्षात्कार लिया गया। ये दोनों शिक्षक चयनित स्कूल में उच्च प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान पढ़ाते थे। कार्य के प्रारम्भ में यह भी प्रस्तावित था कि उनकी कक्षाओं का अवलोकन भी किया जाएगा। अवलोकन के प्रति विषय शिक्षक की अन्यमनस्कता के कारण अवलोकन का कार्य नहीं किया जा सका। इन उपकरणों से प्राप्त समंक ने अध्ययन क्षेत्र की पृष्ठभूमि समझने में मदद की।

सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को शिक्षक, उप-विषयों के शिक्षण समानार्थी समझ रहे थे। शिक्षकों से बातचीत के दौरान वे बार-बार सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए राजनीति विज्ञान और नागरिक शास्त्र शब्द का प्रयोग कर रहे थे। कक्षा में बच्चों को निर्देश देते हुए भी विषय को इसी रूप में प्रस्तुत करते हैं- जैसे– 'नागरिकशास्त्र की कॉपी निकालो'।[1] शिक्षकों का यह मानना था कि 'सामाजिक और राजनीतिक जीवन' शिक्षण का उद्देश्य चारों तरफ हो रही सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक घटनाओं के विषय में बताना और जागरूक करना है। इसके समान्तर इतिहास को 'बीते हुए कल' को पढ़ाने से जोड़कर देखते हैं, विशेष रूप से अपने देश के इतिहास और आजादी की लड़ाई के विषय में पढ़ाने को वे इतिहास से जोड़ते हैं। इसी प्रकार भूगोल को वे 'पृथ्वी,

[1] प्रथम परिचयात्मक अवलोकनों में देखा गया। बाद में शिक्षक की अन्यमनस्कता के कारण अवलोकन न हो सका।

उसके स्थलरूप, मौसम, आदि और भारत व अन्य देशों की विशेषताओं को पढ़ाना' के रूप में देखते हैं।

सामाजिक और राजनीतिक जीवन की नई किताबों पर राय व्यक्त करते हुए शिक्षकों का मानना था कि नई किताबों में कोर्स कम किया है। कोर्स के कम होने को ये बच्चों पर बोझ कम करने से जोड़ कर देखते हैं। इसी प्रकार किताब की साज-सज्जा में बदलाव का उल्लेख भी शिक्षकों ने किया। इनकी विशेष चिन्ता इस तथ्य को लेकर है कि नई पुस्तकों में विषय का ज्ञान कम हो गया है। इस कारण आगे के लिए ये पुस्तकें ज्यादा मददगार सिद्ध नहीं होंगी। यहाँ इन लोगों के 'आगे' का आशय भविष्य की प्रतियोगी परीक्षाओं से है:

'पहले लोग तैयारी के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की किताबें पढ़ते थे क्योंकि इनमें विषय का अच्छा ज्ञान होता था।'

'ज्ञान' को लेकर ही इन शिक्षकों का यह भी मानना था कि 'सामाजिक और राजनीतिक जीवन' में दी गई अवधारणाएँ, कक्षा के स्तर से तादात्म्य नहीं रखतीं। इन अवधारणाओं को बच्चे आगे की कक्षाओं में समझ सकते हैं। पुस्तक में प्रयुक्त भाषा को लेकर शिक्षक अधिक आलोचनात्मक दिखे। इनका मानना था कि–

'ये पुस्तकें अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद की गई हैं, प्रयोग में आने वाले शब्द नहीं हैं। कई जगह इतने कठिन शब्द हैं कि हमारे ही समझ में नहीं आते।'

शिक्षकों ने किताब में दी गई गतिविधियों की भी सराहना की और बताया कि बच्चे बॉक्स में दी गई कहानियों को पढ़ते हैं। लेकिन इन गतिविधियों की कक्षा चर्चा में भूमिका को लेकर वे जागरूक नहीं दिखे।

जब शिक्षकों से केवल अधिगमकर्ता के विषय में पूछा गया तो दोनों ही शिक्षकों का मानना था कि बच्चे स्वाभाविक रूप से सीखते हैं। जब उनसे उनकी कक्षा के बच्चे को अधिगमकर्ता के रूप में केन्द्रित करके पूछा गया तो ऐसे जवाब आए–

'इनके पास बेसिक नॉलेज ही नहीं है, हम चाह करके भी कुछ नहीं कर सकते' ये जब घर से कुछ पढ़कर आएंगे तभी कक्षा में सीख सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि 'बेसिक नॉलेज' को ये साक्षारता के समान्तर देखते हैं। 'कक्षा 6 में वे कम से कम किताब तो पढ़ लें', को इन्होंने 'बेसिक नॉलेज' माना है। उनकी यह मान्यता उनके शिक्षाशास्त्र को तय करती है–

मैं सबसे पहले बच्चों को पुस्तक पढ़ने के लिए कहता हूँ। इससे कम-से-कम वे पढ़ना तो सीख जाएंगे। जब कहीं वे अटकते हैं तो मैं उनकी मदद करता हूँ जैसे– कठिन शब्दों की व्याख्या कर देता हूँ , उन्हें सरल उदाहरण बताता हूँ। किताब की परिभाषा न लिखवाकर उसे सरल शब्दों में समझाता और लिखवाता हूँ।'

स्कूली संस्कृति को भी वे सीखने वाले की असफलता से जोड़कर देखते हैं–

'जब तक ये हमारे पास आते हैं इनका बेस कमजोर हो चुका होता है। इन्हें पता है कि हम इन्हें फेल तो कर नहीं सकते, बस ऐसे ही बिना पढ़े पास होते जाते हैं।'

सीखने वाले की हीनता के दायरे का विस्तार करते हुए परिवार की सामाजिक पृष्ठभूमि तक ले जाते हैं–

'मैंने तो प्राइवेट स्कूल में भी पढ़ाया है, अब यहाँ पढ़ा रहा हूँ। वहाँ तो गार्जियन हर चीज का ध्यान रखते हैं। यहाँ तो वे बुलाने पर भी नहीं आते।'

सहभागी शिक्षकों के उपरोक्त विवेचित साक्षात्कार से स्पष्ट है कि ये शिक्षक विषय को इसके नए प्रासंगिक रूप में आत्मसात नहीं कर पा रहे हैं। सहभागी शिक्षकों के लिए स्कूली जीवन, आनेवाले वृहत्तर जीवन की तैयारी की अवस्था से संबंधित है। उनके अनुसार छात्र वर्तमान की सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने में सक्षम नहीं है। इनकी यह भी मान्यता है कि यह पुस्तक अधिगमकर्ता की क्षमताओं को अतिरंजित करके देखती है। शिक्षकों के ये विचार उस विश्वास तंत्र को प्रतिबिम्बित करते हैं जो अधिगमकर्ता के प्रति 'हीनता प्रतिरूप' के अनुगामी है। 'हीनता प्रतिरूप' शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं में अधिगमकर्ता की असफलता को उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से जोड़कर देखता है और शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं को विश्लेषण के दायरे से बाहर रखता है। शिक्षकों की इस प्रकार की मान्यता की व्याख्या जब शिक्षा के नवसमाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि जब कक्षागत अभ्यास में अधिगमकर्ता के अनुभवों और विचारों को स्थान नहीं मिलता तब कक्षागत प्रक्रिया एकदिशी, एकरस और अधिनायकवादी बन जाती है। यही स्थिति आगे चलकर शिक्षकों के इस विश्वास को मजबूत करती है कि 'गरीब और निम्न तबके से आने वाले बच्चे अधिगम के लिए आवश्यक तथाकथित पूँजी से हीन होते हैं।'

हीनता का विकल्प : सहभागिता, संवाद और कर्तृत्व (एजेंसी) का बोध

इस शोध कार्य के अगले व मुख्य चरण में शिक्षकों की इस प्रकार की मान्यता के विपरीत,

सामाजिक विज्ञान की शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं में अधिगमकर्ता की सत्ता व सामाजिक चेतना को संज्ञान में लेते हुए शिक्षाशास्त्रीय परिवेश का निर्माण करना था। प्रस्तुत कार्य में अधिगम के निर्माणवादी उपागम के प्रचलित दृष्टिकोण– 'अधिगमकर्ता को एकल व सामूहिक गतिविधियों में संलग्न करना', का विस्तार करते हुए इसे अधिगमकर्ता के अनुभवों को कक्षागत प्रक्रियाओं का अंग बनाने के माध्यम और जीवन्त अनुभवों को अधिगम स्रोत बनाने' के रुप में स्थापित करता है। 'सामाजिक निर्माणवादी' अधिगम उपागम को अपनाते हुए शिक्षाशास्त्रीय गतिविधियों की भूमिका और विषयवस्तु को सीखनेवाले के सामाजिक परिवेश के यथार्थ अनुभवों के समतुल्य रखने का प्रयास किया गया। अधिगम का सामाजिक निर्माणवादी उपागम अधिगम और ज्ञान निर्माण को एक सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया मानता है जो एक विशिष्ट परिवेश में स्थापित होती है और परिवेश, उसके सदस्यों तथा उपकरणों में वितरित होती है (वॉयगास्की, 1987, लेव और वेन्जर, 1991)। इस उपागम की आधारभूत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- अधिगमकर्ता सामाजिक–सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता द्वारा सांस्कृतिक उपकरणों का अन्त:करण करते हुए ज्ञान का निर्माण करता है।
- वह सक्रिय और मननशील है जो अपने जीवन्त अनुभवों पर विचार और मनन करता है।
- सामाजिक अन्त:क्रिया, सहभागिता और संवाद की प्रक्रिया ज्ञान निर्माण में मुख्य भूमिका निभाते है।

स्पष्ट है कि यह उपागम ज्ञान को अधिगमकर्ता के परिवेश से परे सूचनाओं के संग्रहण के रूप में न देखकर परिवेश द्वारा अर्थ निर्माण और व्याख्या के रूप में देखता है। इस प्रकार यह हमें अवसर देता हैं कि हम शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को अवधारणाओं के संचयन के रूप में न देखकर अधिगमकर्ताओं के समूह की संलग्नता द्वारा ज्ञान निर्माण की सतत प्रक्रिया के रूप में समझे (ब्रोफी, 2002)।

सामाजिक और राजनीतिक जीवन विषय से चुनी गई अवधारणाओं के शिक्षण के लिए गतिविधियों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा गया कि अधिगमकर्ता सामाजिक विषयों के प्रति जो समझ लेकर विद्यालय आते हैं, वह शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्रतिबिम्बित हो। शिक्षक की भूमिका को एक निर्देशक और प्रेरक के रूप में माना गया, जिसका कार्य ऐसी अधिगम परिस्थिति का आयोजन करना था, जो कक्षा में छात्र–छात्र,

छात्र-शिक्षक के बीच संवाद के लिए हर सम्भव अवसर प्रदान करें। इन गतिविधियों में अधिगमकर्ता को सहभागिता (Participation), अन्त:क्रिया (Interaction) और सामंजस्य (Negotiation) के अवसर उपलब्ध कराए गए (रेस, 1997)।

विश्लेषण

इस भाग में प्रत्येक चुनी गई अवधारणा की शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रिया की रुपरेखा प्रस्तुत की गई है। तदुपरान्त विस्तृत विश्लेषण दिया गया है।

विविधता और विभेद

इस इकाई का उद्देश्य विविधता और विभेद की अवधारणाओ पर चर्चा करना था। इसके लिए करवाई गई गतिविधि की रुपरेखा निम्नलिखित है:

- कक्षा में एक हैण्ड ऑउट (प्रपत्र) का वितरण किया गया। दिए गए प्रपत्र में छात्र/छात्राओं को नाम, राज्य, भाषा, भोजन, त्यौहार, वेष-भूषा और घर की महत्वपूर्ण सांस्कृतिक गतिविधियों का उल्लेख करने को कहा गया। कुछ रिक्त क्षेत्र भी छोड़ा गया था जहाँ वे अपने विषय में महत्वपूर्ण सूचना देने को स्वतंत्र थे।
- जब इस प्रपत्र को छात्र/छात्राओं ने पूरा कर लिया तो उन्हें अपने पड़ोसी से इन सूचनाओं को साझा करने और उस पर चर्चा करने को कहा गया।
- इसके बाद उन्हें पाँच के समूहों में विभाजित करके भरी गई सूचनाओं में समानता और असमानता खोजने को कहा गया।
- प्रत्येक समूह ने चर्चा के बाद प्रस्तुतीकरण किया। उनके विचारों को श्यामपट्ट पर लिखा गया।
- इन विचारों के आधार पर ही कक्षा चर्चा करवाई गई।

छात्र/छात्राओं के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित सूचनाओं के आधार पर समूह चर्चा करवाने के उपरान्त छात्र/छात्राओं ने ही विविधता के निम्न रूप पहचाने-बाह्य रूपाकार में विविधता (रंग, लम्बाई, मुखाकृति आदि), धर्म, जाति, बुद्धि, सामाजिक वर्ग, जैण्डर, भोजन, भाषा और वेशभूषा। जब छात्र/छात्राओं को यह कहा गया कि क्या ये आधार हमारे साथ रहने की भावना को बढ़ावा देते हैं या बाधा पैदा करते हैं? तो छात्र/छात्राओं ने इन्हीं आधारों को दो वर्गों में रखा। पहले वर्ग में क्षेत्र, भाषा, भोजन और

वेशभूषा को रखा। प्रस्तुतीकरण और चर्चा के दौरान छात्र/छात्राओं ने बताया कि ये विविधता उनके अनुभवों को आनन्दायी बनाती है। यह भी उभरकर सामने आया कि नाम, बाह्य वेशभूषा, खानपान की आदतों और भाषा के द्वारा वे अन्य राज्य, धर्म और जाति के लोगों को पहचानते हैं। यद्यपि सभी समूहों ने कहा कि यह विविधता उनकी अन्त:क्रिया को प्रभावित नहीं करती लेकिन कक्षा चर्चा के दौरान ही छात्र/छात्राओं के बहुत से पूर्वग्रह भी सामने आए–

'बिहारी चावल खाते हैं'
'वह माँस खाता है'

इस प्रकार के पूर्वग्रह को कक्षा चर्चा का हिस्सा बनाया गया। यह उल्लेखनीय है कि यदि कक्षा चर्चा को अधिगमकर्ता के सामाजिक अनुभवों पर आधारित न किया जाता तो इस प्रकार के विषय जो सामाजिक समेकन के लिए चुनौती हैं, कक्षा चर्चा का हिस्सा न बन पाते। कक्षा चर्चा में इन विषयों का आना और उन पर गहन चर्चा इस पक्षपातपूर्ण विश्वास के प्रति पुन:चिन्तन का अवसर प्रदान करती है–

छात्र : सर वह बिहारी है।
शिक्षक : इसका मतलब कि वह बिहार राज्य का रहने वाला है।
छात्र : (हँसता है) हाँ सर, वह बिहारी बोलता है, और चावल खाता है।
शिक्षक : लेकिन वह तुम्हारा दोस्त है, चावल खाने और बिहारी बोलने से क्या वह तुम्हारा दोस्त नहीं रह पाएगा?
छात्र : नहीं सर, (जोर से) वह मेरा दोस्त है। मैं तो ऐसे ही बता रहा था।
शिक्षक : जब वह तुम्हारा दोस्त है तो क्या तुम्हें उसके राज्य या भाषा को बीच में लाना चाहिए?

दूसरे वर्ग में छात्र/छात्राओं ने धर्म, वर्ग, जाति और बुद्धि को रखा। इन आधारों को दूसरे वर्ग में रखने का कारण छात्र/छात्राओं ने यह दिया कि ये आधार हमें एक दूसरे से अलग करते हैं। छात्र/छात्राओं का कहना था –

'एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों के साथ नहीं रहते, धनी गरीब से नफरत करते हैं'

'जाति से हम अलग तो होते हैं लेकिन यह विविधता नहीं है क्योंकि यह हमें साथ नहीं रहने देता'

कक्षा चर्चा में यह उभरकर सामने आया कि ये आधार हमें अलग करते हैं इसलिए विविधता नहीं है। छात्र/छात्राओं के विचार से स्पष्ट हुआ कि उनके लिए विविधता ऐसी भिन्नता है जो उनके जीवनानुभवों को संवृद्ध करती है, जबकि विभेद के रूप, उन्हें एक दूसरे से अलग करते हैं। प्रपत्र में जो रिक्त स्थान दिया गया था, उसमें ज्यादातर छात्र/छात्राओं ने अपनी जाति और वर्ग का उल्लेख किया। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों पक्ष उनके पहचान के मुख्य अवयव हैं। कक्षा की लड़कियों ने रिक्त स्थान में अपने जैण्डर का उल्लेख किया लेकिन लड़कों के प्रपत्र में इसका उल्लेख नहीं था। यह इस बात का द्योतक है कि जैण्डर के रूप में पहचान लड़कियों के लिए एक महत्वपूर्ण आयाम है।

इस गतिविधि के द्वारा जब अधिगमकर्त्ता के सामाजिक अनुभवों को कक्षा चर्चा का हिस्सा बनाया गया तो उन छात्रों ने, जो इस प्रकार की अवधारणाओं को समझने में सक्षम नहीं थे (जैसा कि अधिकतर शिक्षकों ने साक्षात्कार में कहा था) विविधता और विभेद की अवधारणाओं की यथार्थमूलक समझ प्रकट की। चर्चा के दौरान यह भी प्रकट हुआ कि वे सामाजिक यथार्थ की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से करते हैं। इसके साथ-साथ उन्हें, इस प्रकार के शिक्षाशास्त्रीय उपागम के द्वारा उनके पूर्वग्रहों के प्रति भी सचेत किया जा सका।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था

गतिविधि की रूपरेखा

छात्र/छात्राओं को चार के समूह में विभाजित करके उनके सम्मुख निम्नलिखित काल्पनिक समस्या प्रस्तुत की गई और उन्हें इस समस्या के समाधान की योजना बनाने के लिए कहा गया–किसानों ने गेहूँ की बुआई-सिंचाई आदि कर दी है। अब वे फसल पकने का इन्तजार कर रहे हैं। वे सभी इस समय कार्य करना चाहते हैं लेकिन गाँव में उन्हें रोजगार नहीं मिल पा रहा है। वे अपने समूह में कार्य करते हुए इन गाँव वालों को रोजगार प्रदान करने हेतु आर्थिक गतिविधि की योजना बनाए। इस योजना को बनाते हुए उन्हें निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान रखना है–

- इस कार्य से ग्रामवासियों को आर्थिक लाभ होना चाहिए।
- वे सभी गाँव वाले जो कार्य करने योग्य हैं और कार्य करना चाहते हैं उन्हें कार्य मिले।

- इन कार्यों से सामाजिक कल्याण का उद्देश्य भी पूरा होना चाहिए। गाँव के विकास और लोंगों के बीच सहयोग और सहकारिता को बढ़ावा दें।

समूह में कार्य करते समय छात्र/छात्राओं ने अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त किए। इसके साथ-साथ उन्होंने समूह में भी विमर्श किया। योजना का निर्माण, उसके औचित्य निर्धारण, उसकी प्रासंगिकता आदि सभी पक्षों पर विचार करने का अवसर प्रदान किया गया। इस अवसर का उपयोग करते हुए छात्र/छात्राओं ने रोचक योजनाएँ बताईं। किसी ने गाँव में मेला लगवाने का सुझाव दिया, किसी ने अचार का कारखाने लगाने को सुझाया, एक समूह ने सड़क बनवाने की योजना बनाई। एक समूह ने गाँव में फसल कटने के बाद अनाज रखने के लिए गोदाम बनवाने की योजना बनाई। ये सभी सुझाव अधिगमकर्ता के परिवेश से तादातम्य रखते हैं। उनके सुझाए गए समाधान इस प्रकार की समस्या के प्रति उनकी अन्तर्दृष्टि को व्यक्त करते हैं। उनकी योजनाएँ पुस्तकीय उदाहरणों से कहीं आगे यथार्थ के समीप हैं। जब छात्र/छात्राओं को निर्णयकर्ता की भूमिका दी गई और उनके दैनिक संज्ञान को शिक्षाशास्त्र का अंग बनाया गया तो वे स्वाभाविक रूप से दी गई सूचनाओं से परे जाकर मौलिक और आलोचनात्मक चिन्तन करने में सक्षम हुए। अवलोकन में यह भी पाया गया कि समूह में कार्य करने के दौरान छात्र/छात्राओं में एक दूसरे को सुनने, विचार करने, विचार को अग्रगामी बनाने, योजना के सूक्ष्म पक्षों पर ध्यान देने जैसे गुणों के अंकुरण और अभ्यास को भी बल मिला। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि छात्र/छात्राओं ने कार्य का वितरण करते हुए ग्रामवासियों के जैण्डर, शैक्षिक पृष्ठभूमि और सामाजिक स्तर आदि का ध्यान रखा। यह स्पष्ट करता है कि छात्र व्यावसायिक भूमिका के प्रति सामाजिक मान्यताओं की रुढ़ियों के प्रति सचेत हैं और उन्होंने इन रूढ़ियों को स्वीकारोक्ति भी दे रखी है।

इस प्रचलित धारणा के पार वे विकल्पों के विषय में सोच सकें, इसके लिए उनके सम्मुख इस प्रकार के प्रश्न भी रखे गए- महिलाएँ ही खिलौने क्यों बनाए? धनिक या सेठ के अतिरिक्त व्यवसाय के लिए पूँजी का इन्तजाम और कैसे हो सकता है? क्या पढ़े-लिखे लोग शारीरिक श्रम वाले कार्य नहीं कर सकते? यह पाया गया कि ऐसे प्रश्न छात्र/छात्राओं को प्रचलित सामाजिक मान्यताओं और प्रक्रियाओं के प्रति सोचने के लिए एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं। वे 'सामान्य' प्रतीत होने वाले तथ्य की 'असामान्यता' को समझ सकते हैं। इस प्रकार से प्रचलित विभेदक और असमानता का प्रसार करने वाले अभ्यासों को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखना सीखते हैं।

ग्राम पंचायत

- कक्षा के प्रारम्भ में विद्यार्थियों को एक केस पढ़ने के लिए दिया गया।
- पढ़ने के उपरान्त उन्हें निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करने को कहा गया:
  - पंचायत की बैठक में चर्चा के मुख्य विषय क्या थे?
  - पंचायत किस प्रकार निर्णय लेती है?
  - पंचायत की बैठक में चर्चा के अन्य संभावित विषय क्या हो सकते थे?

इन प्रश्नों के आधार पर ही कक्षा चर्चा का आयोजन किया गया।

कक्षा चर्चा से यह स्पष्ट हुआ कि बिना किसी औपचारिक प्रयास के छात्र/छात्राएँ पंचायत के विषय में जानते हैं। अधिकतर छात्र ग्रामीण परिवेश प्रवसन करके आए हुए थे। पंचायत के संदर्भ में उनके प्रासंगिक विचार इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपने परिवेश के सचेत अवलोकनकर्ता हैं। उन्हें मालूम था कि गाँव में सड़क और प्रकाश की व्यवस्था का दायित्व पंचायत का है। उन्हें यह भी मालूम था कि गाँव वालों के आपसी विवाद और सम्पत्ति के विवाद के निपटारे में भी पंचायत की भूमिका होती है।

जब उनसे कहा गया कि पंचायत की किसी गतिविधि, जिसका उन्होंने अवलोकन किया हो, की विवेचना करें तो एक छात्र ने अपने अनुभवों को निम्नलिखित रुप में व्यक्त किया-

> *'पिछले साल मैं गाँव गया था। मेरे पापा और मेरे चाचा में झगड़ा हुआ और उसके बाद वे अलग हो गए। घर की जायदाद के बँटवारे के लिए पापा सरपंच के पास गए। फिर सरपंच और गाँव के कुछ लोग आए और हमारे घर का बँटवारा कर दिया।'*

जब यह छात्र अपने इस अनुभव की विवेचना कर रहा था तो वह केवल एक घटना नहीं विवेचित कर रहा था बल्कि वह अपने निजी अनुभवों को साझा कर रहा था। इस प्रकार के अनुभव प्रमाण हैं कि किस प्रकार से परिवार के विभाजन द्वारा 'अपनों' के 'अन्य' बनने का यथार्थ अधिगमकर्ता के मानस को प्रभावित करता है।

यह भी चर्चा का हिस्सा बना कि पंचायत आम सहमति के आधार पर निर्णय लेती है। इस बिन्दु को आगे बढ़ाते हुए कहा गया कि अपने-अपने समूह में वे चर्चा करें कि 'समूह' में निर्णय किस प्रकार लिया जाता है? समूह चर्चा के बाद कक्षा ने 'सामूहिक निर्णय

प्रक्रिया' को इस प्रकार से विवेचित किया:

' सभी व्यक्ति अपनी राय व्यक्त करते हैं। जब कोई राय व्यक्त करता है तो दूसरे उसकी बात सुनते हैं। दोनों पक्षों में बहस होती है। इस प्रकार समूह विचार करता है और निर्णय लेता है। सभी के विचार महत्वपूर्ण होते हैं, और सबका महत्व होता है। सबकी भलाई का ध्यान रखा जाता है।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समूह में कार्य करते हुए छात्र/ छात्राओं ने समूह की निर्णय प्रक्रिया का सम्प्रत्ययीकरण किया लेकिन इस आदर्श स्थिति के विपरीत दशा जहाँ निर्णय सहमति के बजाय बलाधिकार से होता है, वह भी चर्चा के अन्तर्गत आई। एक छात्र ने कहा कि–

'लेकिन पंचायत की बैठक में 'सब लोग' नहीं जाते हैं , केवल 'साख' वाले लोग हैं जो बैठक में जाते हैं।'

जब चर्चा को आगे बढ़ाया गया तो 'साख' वाले विशेषण के सूचक के रुप में धनी, भूस्वामी, उँची जाति के लोग और बाहुबली जैसे वर्णन प्रकट हुए। यह सारे विवेचन और उदाहरण अधिगमकर्ता की सामाजिक यथार्थ के प्रति समझ का प्रमाण है।

इन गतिविधियों से यह स्पष्ट पता चलता है कि अधिगमकर्ता समाज में होने वाली घटनाओं और परिस्थितियों से पूरी तरह से परिचित हैं। वे क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए के अन्तराल को भी समझते हैं। उनमें सकारात्मक अभिवृत्ति के लक्षण भी देखे गए, जहाँ कि वे अपने मान्यताओं और विश्वास पर पुनर्चिन्तन को तैयार हैं।

शिक्षक की भूमिका

एन.सी.एफ. 2005, के सुझावानुरूप लिखी पुस्तकें जिस प्रकार से विषय सामग्री को प्रस्तुत करती हैं वह सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों के परम्परागत शैली में बदलाव की माँग करता है। प्रथम खण्ड में शिक्षकों के व्यक्त विचार इस बदलाव से तादात्म्य न बैठा पाने का भी प्रतिफल है। इसी स्थिति के समर्थन में जॉर्ज और मदान (2009) का मानना है कि सामाजिक विज्ञान शिक्षकों के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि उनके पास विषय का ज्ञान हो, उन्हें यह सोचना होगा कि वे किस प्रकार से सीखने वाले को सीखने की प्रक्रिया में सहभागी बनाए। इसी प्रकार के विचारों के अनुरूप, पूर्व विवेचित शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रिया में शिक्षक की प्रत्यक्ष भूमिका कम दृष्टिगत होती है, लेकिन अधिगम परिवेश के निर्माता, उत्प्रेरक और निर्देशक के रूप में महती दायित्व शिक्षक का ही है। विषयवस्तु का

चुनाव, इसके साथ सीखनेवाले की संलग्नता, कक्षा-चर्चा के दौरान परस्पर संवाद के अवसर आदि की प्रकृति को तय करने वाले अभिकर्ता के रूप में शिक्षक, स्वंय को 'ज्ञान के स्रोत' और 'कक्षा के सत्ताधीश' होने के बंधन से मुक्त करता है। पाठ्यक्रम के क्रियाकरण में शिक्षक की कड़ी को मजबूत करते हुए यह उपागम शिक्षक-छात्र के बीच संवादहीनता की स्थिति को समाप्त करता है। एक सामाजिक विज्ञान शिक्षक इस प्रकार के शिक्षाशास्त्रीय उपागम द्वारा, अधिगमकर्ता की सामाजिक चेतना को अधिगम प्रक्रिया का हिस्सा बनाता है। वह कक्षा को ऐसे विमर्श स्थल के रूप में रूपान्तरित करता है जहाँ बहुरूपदर्शी और बहुआयामी सामाजिक यथार्थ 'स्वीकृति' के बजाय 'विमर्श' का विषय होता है। विमर्श की यह प्रक्रिया अधिगमकर्त्ता की आलोचनात्मक साक्षरता को संवृद्ध करती है।

स्व-अवलोकन और चिन्तन

विश्लेषण के खण्ड में जिस प्रकार सकारात्मक स्वर में इस प्रयोग की सफलता को दिखाया गया है उसके उलट इस खण्ड में मैं एक सहभागी शोधकर्ता के रूप में स्व-अवलोकन और चिन्तन को प्रस्तुत कर रहा हूँ। जब इस कार्य के प्रारम्भ में स्कूल के प्रधानाध्यापक से मिला तो उन्होंने पहली ही मुलाकात में कहा था-

'तुम लोग रिसर्च करने आते हो फिर हम लोगों की कमियाँ थीसिस में लिखते हो, उसी को रिसर्च कहते हो।'

प्रधानाध्यापक के ये विचार अकादमिक शोधकर्ताओं के प्रति शिक्षकों के संदेह के रूप में देख सकते हैं। इस प्रकार का संदेह का होना अनायास ही शोधकर्ता और शिक्षकों के बीच के अंतराल को बढ़ाता है। मैंने शिक्षकों से बातचीत, उनकी कक्षाओं के अवलोकन आदि में इस अंतराल को महसूस किया। मैं उनके लिए ऐसे बाहरी के रूप में था-

'आपके पास समय है कोई और जिम्मेदारी नहीं है। आप यह सब कर सकते हैं।'
'आपको तो केवल इसी क्लास को पढ़ाना था। आप जितनी चाहे गतिविधि करवाओ।'

ऐसे विचार यह प्रश्न प्रस्तुत करते हैं कि क्या शोधकर्ता की छवि एक 'बाहरी' की है? एक बाहरी के रूप में वह अपना 'काम' करके चला जाता है? शिक्षा के अभ्यास की वास्तविक चुनौतियाँ, केवल शिक्षक के दायरे में हैं?

कक्षा में 'चुप्पी की संस्कृति' इतनी गहरी है इसका आभास मुझे तब हुआ जब मैं छात्र/छात्राओं को कुछ चर्चा करने को, आपस में बातचीत करने को कहता और वे चुप

रहते। वे कई बार आँखें नीची कर लेते, मुँह पर हाथ रखकर मुस्कुराते रहते। एक बार तो एक छात्रा ने कहा–

छात्रा : आपको सब उत्तर पता है। खुद ही बता दीजिए। कब से कोई और कोई और कह रहे हैं'

शिक्षक : अच्छा जी। आपको ऐसा क्यों लग रहा है कि मुझे हर उत्तर मालूम होगा?

(वह मुस्कुराते हुए सर नीचे कर लेती है और धीरे–धीरे कुछ बुदबुदाती है)

मुझसे संवाद करने में तो वे झिझक ही रहे थे आपस में भी वे संवाद करने के बजाय एक दूसरे को देखकर मुस्कुराते ही रहते। इस संस्कृति को तोड़ना और उन्हें गतिविधियों के द्वारा विचार प्रस्तुत करने को प्रेरित करना मेरे लिए चुनौतीपूर्ण था। मेरा यह प्रयास इन छात्र/छात्राओं की 'स्कूली संस्कृति' के अभ्यासों के अनुकूल नहीं था। कक्षा में चर्चा के लिए जब भी मैं कोई प्रश्न या समस्या प्रस्तुत करता था तो हर चर्चा के अन्त में कक्षा की ओर से यह बात जरूर उठती की मैं उस प्रश्न या समस्या का 'सही जवाब' दूँ। प्रारम्भिक कक्षाओं में तो छात्र प्रत्येक संवाद के बाद उसकी पुष्टि के लिए मेरा समर्थन चाहते थे। शुरूआती दिनों में 'सर से पूछ लो मैंने सही कहा है', 'सर आप ही बता दो ना' जैसे जुमले ही सुनने को मिलते थे। कक्षा के छात्र मेरी शिक्षाशास्त्रीय नीतियों को शिक्षण मानते ही नहीं हैं।

'सर न पढ़ाते हैं और न ही समझाते हैं, केवल हमें कुछ–कुछ काम दे देते हैं।'

उनके लिए पढ़ाने के मायने शिक्षक द्वारा की गई व्याख्या और उसका लिखवाया जाना है। सीखने और सिखाने की इस व्याख्या के विकल्प में मैंने जो प्रयास किया क्या इस प्रकार का प्रयास केवल 'शोध' के रूप में ही हो सकता है (जो मजबूत सैद्धान्तिक आधार पर अकादमिक मानकों के अनुरूप हो, पुनःश्च जिसके परिणाम सिद्धान्त को मजबूत करें।) या यह शिक्षक के दैनिक अभ्यास के रूप में भी अवतरित हो सकता है?

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में विकसित शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं के मूल में अधिगमकर्ता की संलग्नता, शिक्षक–छात्र, छात्र–छात्र के बीच सतत संवाद और इस प्रकार से 'कल्चर ऑफ इन्क्वायरी' के पोषण को देखा जा सकता है। शिक्षक की 'अक्षत सत्ता' को स्वीकार करने के बजाय

छात्र/छात्राओं ने सत्ता में भागीदारी भी की। अपने विचारों को कक्षा के सम्मुख रखना, उसके वाद-प्रतिवाद को स्वीकार करने जैसे अभ्यासों में संलग्नता दिखाई । केवल अपने विचार प्रक्रिया तक सीमित न रहकर अधिगमकर्ताओं ने समूह के अन्य सदस्यों के अनुभवों और विचारों को अपने अनुभव जगत का हिस्सा बनाया। कक्षा में सभी के विचारों को महत्व दिया गया। दैनिक अनुभवों को, सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं के अधिगम का आधार बनाकर, छात्र/छात्राओं को आलोचनात्मक चिंतन करने, अपने विश्वास और मान्यताओं पर पुनरावलोकन करने के अवसर प्रदान किए गए। ऐसा किए जाने से अन्तर वैयक्तिक तनाव को संबोधित करते हुए उसे अधिगम अवसर के रूप में देखा गया। कक्षा की सामाजिक संरचना में शिक्षक के अधिनायकत्व के बदले लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लक्षण देखने को मिले। कक्षा की यह लोकतांत्रिक संरचना शिक्षक-छात्र, छात्र-छात्र और छात्र-अधिगम सामग्री के बीच एकदिशीय और सत्ता आधारित संबंध को बदलने का सामर्थ्य रखती है। यह पाया गया कि अधिगमकर्ताओं ने स्वंय को निर्णयकर्ता, समस्या प्रस्तावक और लोकतांत्रिक विमर्श के सहभागी के रूप में देखा जहाँ उनके विचारों और प्रतिक्रियाओं को पूरा सम्मान मिला। इस कार्य के द्वारा सामाजिक विज्ञान शिक्षकों की प्रचलित मान्यता के रूप में व्याप्त 'हीनता प्रतिरूप' के विपरीत यह पाया गया कि अधिगम के सामाजिक-सांस्कृतिक शिक्षाशास्त्रीय ढाँचे के अन्तर्गत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आयोजन करने पर वे निष्क्रिय प्राप्तकर्ता के बजाय सक्रिय ज्ञान निर्माता की भूमिका में शिक्षक, अधिगम सामग्री और स्व से निगोशिएशन करते हैं और इस प्रकार से कर्तृत्व का बोध करते हैं।

छात्र/छात्राएँ 'कल के व्यस्क' होने के साथ-साथ वर्तमान में भी, जटिल सामाजिक तंत्र में स्थापित सक्रिय अभिकर्ता हैं जो सामाजिक यथार्थ को संज्ञान में लेते हैं। सामाजिक विज्ञान की केन्द्रीय विषयवस्तु समाज है, बदलाव जिसकी मूल प्रकृति है। ऐसे विषय को समझने के लिए एक पूर्व परिभाषित 'ज्ञान का भण्डार' तय नहीं किया जा सकता है, और न ही ज्ञान के 'स्थान्तरण' के द्वारा 'पुनरूत्पादन' के बजाय 'रूपान्तरण' की सम्भावना देखी जा सकती है। इसके लिए हमारा शिक्षाशास्त्रीय उपागम, वृहत्तर सामाजिक प्रक्रियाओं का प्रच्छन्न क्रियान्वयन और पुनर्बलन न होकर बल्कि उनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान करने वाला होना चाहिए। लेकिन इस प्रकार के उद्यमों की सार्थकता के लिए शिक्षकों के शिक्षाशास्त्रीय विश्वासों और मान्यताओं का संबोधित किया जाना अपरिहार्य है।

सन्दर्भ

ब्रोफी, जे. (सम्पा.) (2002): *सोशल कन्सट्रक्टीविस्ट टींचिंग: अर्फोडेन्सेस एण्ड कन्सट्रेन्स,* बोस्टन: एल्सवेअर

ब्रोफी, जे. और एल्मैन, जे. (2005): *व्हाट डू चिल्ड्रेन नो अबाउट कल्चरल यूनिवर्सलस्?* सोशल एजूकेशन 66(7), पृष्ठ 453–457

जॉर्ज, ए.एम. और मदान, अ. (2009): *टींचिंग सोशल साइन्स इन स्कूल्स।* नई दिल्ली: सेज प्रकाशन

गे, जी. (1997): *दी रिलेशनशिप बीटवीन मल्टी कल्चरल एण्ड डेमोक्रेटिक एजूकेशन।* दी सोशल स्टडीज 88(1), पृष्ठ 5–11

हाइन, सी.डी. (1995): *दी ट्रीटमेंट ऑफ माइनार्टी इन यू.एस. हिस्ट्री टेक्स्ट बुक*। दी सोशल स्टडीज 94(2), पृष्ठ 75–80

सीगल (2004): *ब्लरिंग द लाइन बीटवीन कान्टेन्ट एण्ड पेडागॉजी।* सोशल एजुकेशन, 68(7), पृष्ठ 479–482

बत्रा, पी. (2010): (सम्पा.), *सोशल साइन्स लर्निंग इन स्कूल्स: पर्सपेक्टिव एण्ड चैलेंन्जेज।* नई दिल्ली: सेज प्रकाशन

लेव, जे. व वेन्जर, ई. (1991): *सिचुएटेंड लर्निंग: लेजीटीमेट पेरीफेरल पार्टीशिपेशन,* न्यूयार्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

एन.सी.ई.आर.टी. (2005): *नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क,* नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.

ओगले, डी., क्लैम्प, आर. व मैकब्रिडे, बी. (2007): *बिल्डिंग लिट्रेसीज इन सोशल स्टडीज,* अलेक्जेड्रिया, वी.ए.: एसोसिएशन फॉर सुपरविजन एण्ड करीकुलम डेवलपमेण्ट

वॉयगॉस्की, एल. (1987): *माइण्ड इन सोसाइटी*, कैम्ब्रिज : हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

रेस, जे. (1997): *माइण्ड इन एक्शन,* न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

विनेबर्ग, एस. व मार्टिन, डी. (2001): *रीडिंग एण्ड राइटिंग हिस्ट्री,* एजूकेशनल लीडरशिप 62(1), पृष्ठ 42–45

पार्कर, डब्ल्यू.सी. (2010): *सोशल स्टडीज टूडे, रिसर्च एण्ड प्रैक्टिस*, न्यूयार्क: रटलेज

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

अध्यापक-शिक्षा के नवाचारी पदचिह्न

जितेन्द्र लोढ़ा*

विषयपरक पृष्ठभूमि

'अध्यापक-शिक्षा', राष्ट्र के उत्पादन तंत्र की महत्वपूर्ण मध्यवर्ती शैक्षिक-सेवा है। किसी भी शैक्षिक-संस्थान की गुणवत्ता व सार्थकता, शिक्षकों की गुणवत्ता से परे हो ही नहीं सकती। अतएव अध्यापक-शिक्षा, एक प्रकार से सभी उत्पादनों के लिए मानव-पूंजी तैयार करने वाले राष्ट्र-निर्माता अर्थात् शिक्षकों को गढ़ने वाला महत्वपूर्ण प्रकल्प है। नयी सदी के इस दौर में बदलाव व नवाचारों की धारणाएँ बलवती हैं, साथ ही सभी प्रकार के उत्पादों के हितधारी (Stake-Holder) वैयक्तिक से लेकर वैश्विक स्वरूप में मौजूद है। ऐसे में शिक्षक-शिक्षा के समक्ष आज अपने विकास व अस्तित्वकारी मुद्दों को लेकर अनेक समस्याएँ व चुनौतियाँ व्याप्त हैं।

ज्ञान के सतत-विकास, उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रभावशीलता, शिक्षक-पेशे की नयी तकनीकियों का उदय, हितधारी-वर्गों की आवश्यकताओं से अनुकूलन, श्रम-विभाजन व विशिष्टीकरण की अवधारणा का प्रचलन, सूक्ष्म-विशेषज्ञता का प्रचलन, ज्ञानोन्मुख अध्यापक-शिक्षा, गुणवत्ता-सुनिश्चितकरण की धारणा का प्रचलन, ब्राँण्ड-इमेज बनाने हेतु, स्रोतों के सर्वोत्तम उपयोग हेतु, परस्पर जुड़ाव व नेटवर्किंग का प्रचलन, सूचना व कम्प्यूटर-ज्ञान (ICT) आधारित व्यवस्थाओं का प्रचलन, नियामक संस्थानों एवं वैधानिकताओं के मानकों की आपूर्ति हेतु एवं सतत-विकास (Sastainable Development) की अवधारणा के प्रचलन के चलते, आज अध्यापक-शिक्षा का नवाचारी, प्रगतिशील एवं बदलावकारी होना अपने आप में एक आवश्यकता आधारित कार्यक्रम है। इसके लिए शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं व्यवस्थाओं में ऐसी अवधारणाओं का निवेश होना चाहिए, जो शिक्षक-शिक्षा को सतत रूप से समकालीन-समाज के अनुरूप, न केवल सबल बनाए, बल्कि उसका प्रभावी

*व्याख्याता-शिक्षा, आर.एल. सहरिया राजकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, कालाडेरा (जयपुर) राजस्थान
ई-मेल : dr.jitendrlodha@yahoo.com

नेतृत्व करने का सामर्थ्य भी रख सके, तभी जाकर सामयिक व गतिशील शिक्षक-शिक्षा का उदय हो पायेगा।

भारतीय संदर्भ में अध्यापक-शिक्षा के कतिपय आधारभूत मुद्दों पर नजर डालते हैं तो स्पष्ट नजर आता है कि प्राथमिक-स्तर पर गठित डाईट (DIET) तथा माध्यमिक स्तर पर गठित शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (CTE) के साथ-साथ उन्नत शिक्षा अध्ययन संस्थानों (IASE'S) के अस्तित्व में आ जाने के बाद भी सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण में अपेक्षित नवाचारी-आयाम नहीं जुड़ सके हैं। सेवारत शिक्षण-प्रशिक्षण की दशा तो और भी अधिक चिन्ताजनक है। यदि हम शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रमों, नियुक्त शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं उनके कार्यक्रम एवं संचालनीय गतिविधियों की गुणवत्ता आदि को निर्धारित मानकों, प्रतिबद्धता, उपलब्धि एवं उत्कृष्टता की कसौटी पर कठोरतापूर्वक परखें तो आंशिक संस्थाएँ भी यदि खरी उतर जाए, तो भी गनीमत है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) एवं राष्ट्रीय आकलन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) के मध्य संयुक्त रणनीति के स्वीकार किये जाने तथा अध्यापक शिक्षा संस्थानों द्वारा इनकी परिधि में मूल्यांकन कराये जाने की व्यवस्था पर पहल किये जाने के बावजूद, आज भी हमारे अध्यापक-शिक्षा संस्थान सतत-विकास, हितधारी-वर्गों की मांगों एवं गुणवत्ता के मुद्दों पर कंगाल नज़र आते हैं। इस संबंध में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) के मुखपत्र अन्वेषिका (2005) के आलेख 'भारतीय संदर्भ में अध्यापक-शिक्षा : परिदृश्य एवं चुनौतियाँ' में वर्णित निम्नांकित विचार एकदम समीचीन एवं प्रासंगिक है- ''एक व्यापक, गतिशील, मूल्यों पर आधारित, संवेदनशील, उत्तरदायी, नवाचारी एवं वैश्वीकरण की विवशताओं से निपटने का समार्थ्य रखने वाली दूरदर्शी अध्यापक-शिक्षा विकसित करना, हमारी सबसे बड़ी चुनौती है।'' कोठारी-आयोग (1964-66) में भी स्वीकारा गया कि ''अध्यापक-शिक्षक के कार्यक्रमों का सार, उनकी गुणवत्ता व उपयोगिता में है, जो उनमें नहीं है, आवश्यक मानकों की आपूर्ति नहीं कर पाने के कारण इनमें लगा धन व्यर्थ है।'' (पैरा 4.13 पृ.सं. 72) राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 व 1992 में भी स्पष्ट रूप से सिफारिश की गयी है कि ''अध्यापक-शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है, जो सेवापूर्व व सेवा उपरान्त अनवरत, आवश्यक तथा प्रेरणादायी होनी चाहिए। अपने प्रथम कदम में सम्पूर्ण शिक्षातंत्र सदैव समाज की व्यापक व नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए।'' यशपाल कमेटी (1993) ने भी यह रेखांकित किया है कि ''भारतीय अध्यापक-शिक्षण संस्थान गुणवत्ता व आवश्यकता के पटल पर

निबल है। अत: भारतीय अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक पाठ्यक्रमों के साथ-साथ, अधिक से अधिक प्रायोगिक अभ्यासों की मुख्य आवश्यकता है।''(पृ.सं. 26-27)

इसी क्रम में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) द्वारा जारी अभिलेख 'गुणवत्तापूर्ण अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम परिप्रेक्ष्य' (1998) में यह स्वीकारा गया कि स्वदेशी संकल्पना के परिपालन हेतु अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित की जानी चाहिए, जो भारत की सांस्कृतिक-विरासत पर आधारित हो तथा सामाजिक परिवर्तन व निरन्तरता के अनुरूप ही संवैधानिक उद्देश्यों को प्राप्त कराये तथा नयी सामाजिक-व्यवस्था के अभ्युदय में सहायक हो, व्यावसायिक रूप से दक्ष व समर्पित शिक्षक तैयार करे। यह सर्वाधिक मुखर चुनौती है। 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' (2005) में भी यह स्वीकार किया गया है कि 'अधिकतर शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम विद्यार्थी-शिक्षकों को अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के अवसर नहीं देते और इस प्रकार वह शिक्षकों को बदलाव कर्मियों के रूप में सक्षम नहीं बना पाते।' (पृ.सं. 121)

उपर्युक्त सभी संदर्भों से जाहिर है कि अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में आज अनेक समस्याएँ, विसंगतियाँ एवं द्वन्द्वात्मक स्थितियाँ होने के साथ-साथ वर्तमान समय की मांगों के अनुकूल भारी बदलाव की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षक-शिक्षा के सभी संदर्भों को आज की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के साथ तादात्म्य बैठाना होगा, अपने आप को समय की मांगों के अनुकूल तैयार करना होगा, तब जाकर हम कह सकेंगे कि हमारी अध्यापक-शिक्षा नवाचारी व मंगल परिवर्तनकारी पदचिह्नों का अनुगमन कर, वर्तमान की हो गयी है।

नवाचार क्या है?

शाब्दिक तौर पर 'नवाचार', नये विधान, नयी प्रक्रिया/प्रथा, नयी तकनीकी/विचार या कुछ नया परिवर्तन लाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी भाषा में इनोवेशन् (Innovation) शब्द लेटिन भाषा के इनवेयर (Innovare) शब्द से बना है, जिसका मतलब है, 'कुछ नया करने के लिए कुछ बदलाव लाना।' इस प्रकार स्पष्ट है कि 'नवाचार' वह पद है, जिसमें खोज, अनुसंधान एवं परिवर्तनकारी-प्रयासों को अनुकूलन व अस्तित्व (Sustain) के लिए सतत रखा जाता है ताकि 'उत्पाद' को हितधारियों की मांगों के न केवल अनुकूल रखा जाए, बल्कि उस दिशा के विविध आयामों में कुछ नया कर, उसे उन्नत व प्रगतिशील बनाया जाए। शिक्षा-वर्णन के अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोष के

अनुसार ''शिक्षा व शिक्षण में नये विचारों एवं अभ्यासों को संस्थापित करना 'नवाचार' है।'' एन.सी.ई.आर.टी. (2007) के अनुसार ''उत्पाद व सेवाओं की उपयोगिता व अभ्यासों में नये विचारों के साथ समय की मांगों के अनुकूल सार्थक परिवर्तन करना, नवाचार के दायरे में आता है।''

नवाचार की अवधारणा के वर्णन से स्पष्ट है कि नवाचार का विषय एवं तदनुरूप नये विचार, हितधारी-केंद्रीयता, खोज-अनुसंधान, अनुकूलन, अस्तित्वकारी प्रयास एवं सतत, सार्थक-बदलाव व क्रियान्विति नवाचार के प्रमुख घटक है। एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली (1997) द्वारा 'विद्यालय एवं अध्यापक-शिक्षा में नवाचार' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यापक-शिक्षा में नवाचार के अग्रगामी लक्षण रेखांकित किये गये:

- एक वैयक्तिक इकाई के तौर पर यह देखना कि हम संबंधित तंत्र के पर्यावरण में नया क्या कर सकते हैं ?
- वर्तमान के प्राप्य मानकों से उत्कृष्ट स्थितियाँ पैदा करना।
- संयोग से परे व सोचा-समझा परिवर्तन।
- अप्रचलन से प्रचलित बनाने की सक्षमताएँ प्राप्त करने के बदलाव।
- पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कराने में सहायकारी बदलाव।
- उन्नतकारी परिणाम देने वाले परिवर्तन, जो उत्पाद या सेवा तंत्र को उत्कृष्टता प्रदान करें।
- प्रकृति से सकारात्मक व हितधारी-केंद्रीत बदलावकारी

समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि नवाचार एक सृजनशील, सार्थक व समयानुकूलित परिवर्तन है, जो किसी नीति, कार्यक्रम, तंत्र, उपक्रम, गतिविधि, सेवा एवं उत्पाद में बदलावों की क्रियान्विति से सार्थक व सतत-उन्नति को दिशा देता है, फिर वह क्षेत्र या दिशा अध्यापक-शिक्षा की ही क्यों न हो–

अध्यापक-शिक्षा में बदलाव का वर्तमान दृष्टिकोण

अध्यापक-शिक्षा के वर्तमान पर्यावरण में उसके सम्मुख अनेक बाधात्मक एवं सतत-विकासपरक चुनौतियाँ खड़ी हैं, जिसके चलते, उसे एक ओर बाधाओं व समस्याओं से निजात पाने के लिए बदलाव लाना है, तो वहीं दूसरी ओर उसे विकास के नये मानक भी गढ़ने हैं। ऐसे में अध्यापक-शिक्षा के बदलाव या नवाचार, निर्भर करेंगे, उसके कमाण्ड क्षेत्र के हितधारियों की मांग, संस्कृति, दशा-दिशा, परिवर्तन एवं विवशताओं के

स्वरूप पर। यदि शिक्षक-शिक्षा के समकालीन हितधारी-वर्गों की आशाओं व अपेक्षाओं का आकलन कर, उनकी चिन्ताओं व बहुलतावादी स्वभाव को पहचान कर, तदनुरूप निर्णय लिये जाए तो हमें स्वत: ही उसमें परिवर्तन की आवश्यकता व उसकी दिशा का भान हो जाएगा। वैसे इस दिशा में **लिबरमैन** व **मिलर (2009)** का यह मॉडल अनुकरणीय है–

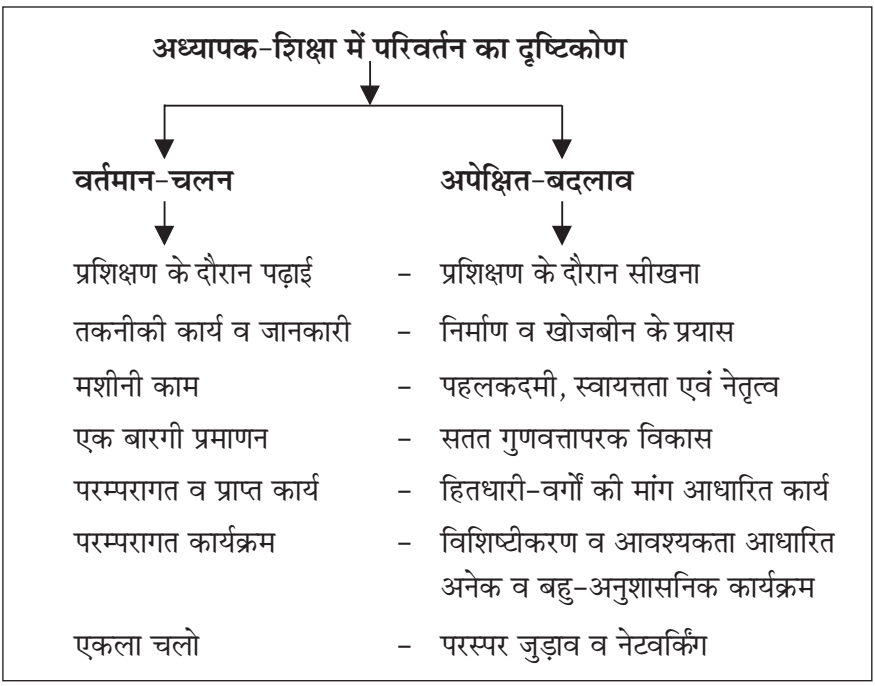

उपर्युक्त प्रवाह चित्र से स्पष्ट है कि अध्यापक-शिक्षा में बदलाव अर्थात् नवाचार एक प्रगतिशील कदम है। किसी भी संस्थान का अस्तित्व व सफलता, उसके बदलावकारी दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। अध्यापक-शिक्षा में बदलाव का आधार, शिक्षा की वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय शैक्षिक-मांगें होती हैं, तदनुरूप शिक्षकों को गढ़ना ही अध्यापक-शिक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी है–

अध्यापक-शिक्षा में नवाचारी-संस्कृति के प्रतिमान

प्रत्येक नवाचार अपनी एक पृथक पहचान व संस्कृति रखता है। इस दृष्टि से अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ ऐसी बदलावकारी धारणाओं की सम्भावनाएँ हैं, जिनको वरण करने से अध्यापक-शिक्षा वर्तमान की अर्थात् नवाचारी-उपागम बन जाएगी।

इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक-शिक्षा के पर्यावरण में आवश्यक पहलकदमी व सम्यक् नेतृत्व हो, जो जोखिम उठा सके, जो नये मानकों को गढ़ सके, जिसका हर बदलाव अपने हितधारियों की संतुष्टि के लिए हो, तब जाकर हमारे अध्यापक-शिक्षा संस्थान नवाचारी-संस्कृति का हिस्सा बन पायेंगे। वर्तमान में अध्यापक-शिक्षा की नवाचारी-संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमान इस प्रकार है–

- एकीकृत व सूक्ष्म-शिक्षण कौशल।
- जीवन-कौशलों का एकीकरण।
- सहभागिता की अवधारणा से समस्याओं का समाधान।
- वैयक्तिक अध्यापक-शिक्षा।
- विशिष्टीकृत अध्यापक-शिक्षा।
- बहुअनुशासनिक अध्यापक-शिक्षा।
- सूचना व संप्रेषण प्रौद्योगिकी (ICT) केन्द्रित दृष्टिकोण।
- चयन में लचीलापन।
- हितधारी-वर्ग केन्द्रित।
- पाठ्यक्रमों का विकास व नवीनीकरण।
- सतत व आंतरिक मूल्यांकन पद्धति।
- संरचनात्मक दृष्टिकोण।
- सृजनशील, संवेदनशील, मानवतावादी एवं मूल्यपरक।
- सहायक पाठ्यक्रमों का समावेशन।
- सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण।
- सार्थक व आवश्यकता आधारित सतत अनुसंधान।
- पढ़ाने व सीखने की अवधारणाओं का पृथकत्व।
- ज्ञान व तकनीकी के एकीकृत कौशलों का समावेशन।

इन वर्णित प्रतिमानों को यदि अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम, कार्यक्रमों एवं क्रियान्वितियों में शामिल कर दिया जाए तो अध्यापक-शिक्षा में भी एक नवाचारी-संस्कृति उदित हो जाएगी। नवाचारी अध्यापक-शिक्षा के आयामों को नीचे दिए गए चित्र से स्पष्ट किया जा रहा है:

नवाचारी अध्यापक-शिक्षा

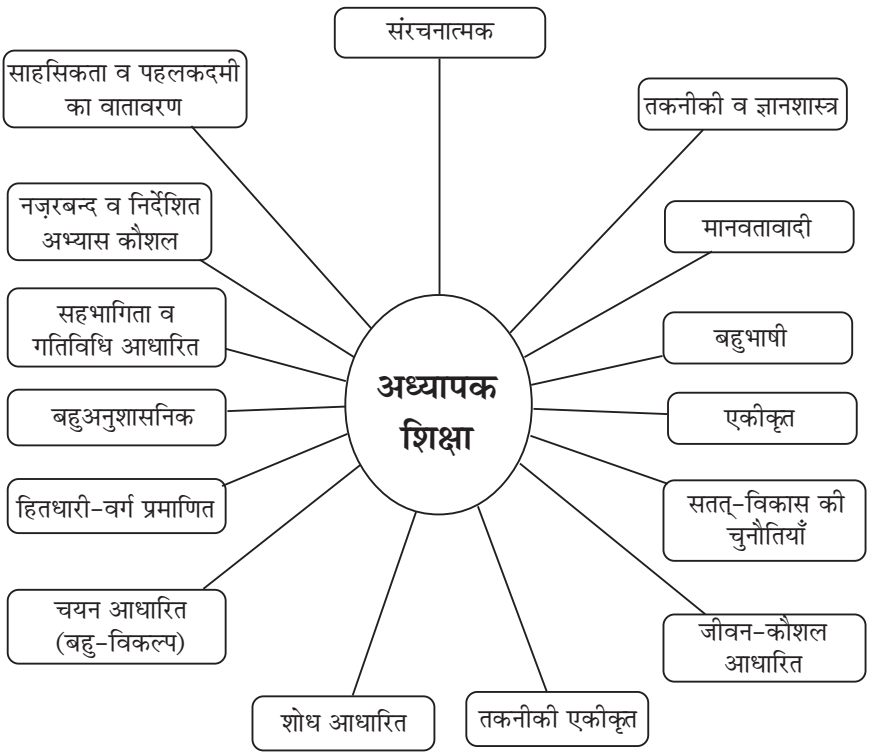

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि आज बदलाव के तौर पर अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में समग्रवादी (Wholistic) अध्यापक-शिक्षा, ई-अध्यापक-शिक्षा, मापांकीय (Moduler) अध्यापक-शिक्षा, एकीकृत अध्यापक-शिक्षा, वैयक्तिक अध्यापक-शिक्षा एवं विशिष्टीकृत अध्यापक-शिक्षा का प्रचलन है, जिनमें वैयक्तिक कक्षा-कक्ष निर्धारण, अधिगमकर्ता केन्द्रित, स्वैच्छिक चयन, सहभागिता, शून्य व्याख्यान कार्यक्रम (ZLP), अध्ययन की स्वतंत्रता, सतत् व स्वतंत्र मूल्यांकन, विविध प्रकार के प्रदर्शन व प्रस्तुतियों का चलन, मानवतावादी एवं खुले स्रोतों के अनुप्रयोग जैसे अनेक घटक स्वत: रूप से शामिल हैं। आज यदि एक अध्यापक-शिक्षा संस्थान अपनी वैधानिक पृथक व विशिष्ट पहचान बनाना चाहता है तो उसे अपनी इमेज मानवीय और व्यावसायिक बनानी होगी, साथ ही उसे अपनी प्रत्येक गतिविधि व कार्यक्रमों की प्रमाणिकता भी सिद्ध करनी होगी, और इन सबके लिए अध्यापक-शिक्षा का नवाचारी होना बहुत जरूरी हैं। इस संबंध में

अध्यापक-शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप (NCFTE-2009) में बड़ी उम्मीदों के साथ स्वीकारा गया हैं कि ''अध्यापक-शिक्षा अपनी पहचान व इमेज बनाने के लिए नवाचारी होनी चाहिए, जिससे उसके उत्पाद (Output) एक बदलावकर्मी के रूप में अपनी सक्षम उपस्थिति दर्ज करा सकें।''

अध्यापक-शिक्षा के नवाचारी कार्यक्रमों की एक बानगी

समय की आवश्यकताओं को देखते हुए व्यक्तित्व-विकास, अभिव्यक्ति-कौशल, मानवाधिकार, जीवन-कौशल सीखने का प्रबंधन, बहुसांस्कृतिक-शिक्षा, पर्यावरण-शिक्षा, किशोरावस्था-शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा, मीडिया-समर्थन शिक्षा, तकनीकी केन्द्रित उपागम, व्यावसायिक-शिक्षा, ई-लर्निंग, ई-विषयवस्तु के साथ-साथ राष्ट्रीय-एकता व अन्तर्राष्ट्रीय समझ की शिक्षाओं को आज अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अध्यापक शिक्षा के साथ सफल क्रियान्विति के रूप में जोड़कर देखा जा रहा है। आज अनेक अध्यापक-शिक्षा संस्थान, अपने विविध स्तरों पर, अनेक नवाचारी पाठ्यक्रमों को डिजाइन कर, अपने स्तर पर चला रहे हैं। भारत के संदर्भ में इस दिशा के कुछ नवाचारी कदम इस प्रकार हैं:

- राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, भोपाल व चैन्नई ने एम.टेक. (शिक्षा) का पाठ्यक्रम चला रखा है।
- राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, चण्ड़ीगढ़ द्वारा एम. टेक. की उपाधि को अभियांत्रिकी-शिक्षा में दिया जा रहा है।
- देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा स्नातक कम्प्यूटर-शिक्षा (B.C.Ed. - 1989) व स्नातकोत्तर कम्प्यूटर-शिक्षा (M.C.Ed.-1991) का संचालन किया जा रहा है।
- श्रीमती नत्थी बाई दामोदर ठाकरसी (SNDT) महिला विश्वविद्यालय, मुम्बई द्वारा मास्टर ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी का पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है।
- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा द्वारा एम.टेक. की उपाधि शिक्षा-तकनीकी में प्रदान की जा रही है।
- सिक्किम मनीपाल विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा-तकनीकी में बी.एस.-सी. की उपाधि दी जा रही है।
- एकलव्य संस्थान भोपाल द्वारा संचालित हौशंगाबाद विज्ञान-शिक्षण कार्यक्रम (HSTP-1982)।

- लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा संचालित वैयक्तिक अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम (PTEP-1996)।
- मुम्बई विश्वविद्यालय के गांधी शिक्षण भवन (कॉलेज) द्वारा तुलनात्मक अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम (CTEP-2000)।
- एन.सी.ई.आर.टी. के क्षेत्रीय संस्थानों एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा अध्यापक-शिक्षा के चार वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम चालाए जा रहे हैं।
- चेन्नई, तमिलनाडू में अध्यापक-शिक्षा विश्वविद्यालय का संचालन।
- इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा अध्यापकों के उन्नयन एवं व्यावसायिक-क्षमता अभिवृद्धि कार्यक्रम (IIPCAT-2009) चलाया जा रहा है।
- राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समझ हेतु भारतीय अध्यापक-शिक्षा संस्थान, गुजरात (IITE, Gujarat Bill-2010) द्वारा नवाचारी शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम (ITEP) चलाया जा रहा है।
- वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान द्वारा सहभागिता आधारित अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम (बी.एड. उन्नत-1997) चलाया जा रहा है, जिसे 'अन्वेषणा' के नाम से जाना जाता है।
- मीराम्बिका श्री अरविन्दों शिक्षा समिति, नई दिल्ली द्वारा प्राथमिक-शिक्षा में अध्यापक-शिक्षा का एकीकृत पाठ्यक्रम (1983) चलाया जा रहा है।

अध्यापक-शिक्षा में नवाचारी-संस्कृति की स्थापना के महत्वपूर्ण कदम

कोठारी कमीशन (1964-1966) द्वारा पुरजोर शब्दों में कहा गया कि ''किसी भी संस्थान की गुणवत्ता, शिक्षक की गुणवत्ता से परे हो ही नहीं सकती''। इसी प्रकार की बात डेलार्स रिपोर्ट (1996) व शिक्षकों की गुणवत्ता की 'अन्तर्राष्ट्रीय पड़ताल 2015 तक लिए' युनेस्को (UNESCO REPORT-2006) की रिपोर्ट में भी की गयी है, जिसमें यह कहा गया है कि ''एक शिक्षक की गुणवत्ता राष्ट्र के सभी उत्पादन संस्थानों की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती है।'' ऐसे में शिक्षक बनाने वाले अध्यापक-शिक्षा संस्थानों की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। इस तथ्य की गम्भीरता को समझते हुए भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986' की संस्तुतियों के परिप्रेक्ष्य में 1987 में अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों का पुनर्गठन व पुर्नसंरचना की, जिसके अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में प्रमाणिक व मूल्यपरक संस्थाएँ व

संसाधन बढ़ाए जायेंगे, विषयवस्तु व नवीन ज्ञान की दृष्टि से तकनीकी व शैक्षणिक स्रोतों में वृद्धि की जाएगी, शिक्षकों के लिए सार्थक व आवश्यकता आधारित कौशलों के विकास हेतु नवीन कार्यक्रम प्रारम्भ किये जायेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की तर्ज पर 1992 की संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी इस तथ्य को दोहराया गया कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की सार्थकता, उसकी विषयवस्तु तथा ज्ञान के सतत-विकास (Continuous Upgrdation) पर निर्भर करेगी, अत: अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम के तकनीकी व शैक्षणिक स्रोत नवीन ज्ञान पर आधारित होने चाहिए। 10वीं पंचवर्षीय योजना में इस तथ्य को गम्भीरता से लेते हुए कहा गया कि ''शिक्षा के गुणात्मक-विकास के लिए अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रमों को उन्नत व अद्यतन बनाना है।'' राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005 में भी यह स्वीकार किया गया है कि ''शिक्षक शिक्षण संबंधी नयी दृष्टि स्कूल व्यवस्था में बदलावों के प्रति अधिक संवेदनशील होगी, क्योंकि यह पूरे नजरिये में बड़े परिवर्तन की कल्पना करती है।'' (पृं.सं. 124) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) द्वारा अध्यापक शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप (NCFTE-2009) में अध्यापक-शिक्षा के आधारभूत ज्ञानशास्त्र, तकनीकी व शिक्षकत्व के आवश्यक कौशलों एवं विद्यालयीय-अभ्यासों में ढ़ांचागत बदलाव की बात की है। (पृ.सं. 24) इन सभी संस्तुतियों के आलोक में अध्यापक-शिक्षा को नवाचारी बनाने के लिए, अग्रलिखित कदम उठाए जाने चाहिए :

(अ) मनोवैज्ञानिक कदम

- नये विचारों को जन्म देने वाले वातावरण व संस्कृति को अपने संस्थान में प्रश्रय देना।
- नवाचार की अनुकूल परिस्थितियों का संस्थान में सतत स्वरूप से बीजारोपित करना।
- नवाचारी विचारों को सांस्थानिक, सामाजिक व प्रशासनिक समर्थन देना।
- नवाचारी कार्यक्रम में पहल करने वालों को विशिष्ट दर्जा देना।
- असफलताओं का सामना करने के लिए सदैव वैयक्तिक व सांस्थानिक स्तर पर तैयार रहना।
- विकास के लिए खुलेपन की पहल करना एवं प्रत्येक सफलता का स्वागत करना।

- नवाचार की अग्रगामी संस्थाओं (Apex Agencies) के विचारों व पुनरावलोकनों के लिए सदैव तैयार रहना।

(ब) क्रियात्मक कदम

- वैयक्तिक व सामाजिक आवश्यकताओं का निर्धारण कर तदनुरूप अध्यापक- शिक्षा के पाठ्यक्रमों की सार्थकता सिद्ध करना।
- अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम व कार्यक्रमों में सम्यक् गतिशीलता व लचीलेपन को प्रबंधित करना।
- बहु-अनुशासनिक व एकीकृत अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रमों को सामयिक आवश्यकता अनुसार डिजाइन कर, उन्हें बढ़ावा देना।
- शिक्षकत्व के कार्यों पर आधारित अध्यापक-शिक्षा को बढ़ावा देना।
- अभ्यास-शिक्षण की दिशा में पुनर्गठन व पुनर्संरचना को बल देना व इस दिशा के सुधारवादी अनुसंधानों को प्रबंधित करना।
- मूल्यांकन-तंत्र को सार्थक व वैधानिक बनाने में सहयोग प्रदान करना।
- अध्यापक-शिक्षा संस्थानों में परस्पर जुड़ाव व नेटवर्क स्थापित कर, नवाचारी तथ्यों को सभी के साथ साझा करना।
- गुणवत्ता नियामकों, वैधानिक एवं मान्यतापरक नियामकों के मानकों को न केवल सतत स्वरूप में प्रबंधित करना, बल्कि इस दिशा के नये मानकों के लिए पहल भी करना।

निष्कर्ष

21वीं सदी के वर्तमान दौर में अनेक परिवर्तन व विकास हुए हैं। इस लिहाज से अध्यापक-शिक्षा का नवाचारी, प्रगतिशील व बदलावकारी होना लाजमी है। यद्यपि 1960 के दशक से ही समग्र-विकास की दृष्टि से शिक्षक-शिक्षा का उन्नतशील होना आवश्यक माना जा रहा है, लेकिन इसका जमीनी यथार्थ (भारत के संदर्भ में) शोचनीय है। वर्तमान में शिक्षक-शिक्षा संस्थानों की मशरूमिंग व असार्थकता, शिक्षक-शिक्षा में भारी बदलाव के संकेत दे रही है, अत: शिक्षकों की शिक्षा को वर्तमान समाज की उभरती मांगों, परिवर्तनों, क्रियाओं, प्रयासों अवधारणाओं एवं घटनाओं के प्रति संवेदनशील होकर बहु-अनुशासनिक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में शिक्षक-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों में ऐसी

अवधारणाओं का निवेश करना चाहिए, जो अध्यापक-शिक्षा को सभी प्रकार की चुनौतियों का सामना करने योग्य बना सके। चूँकि नवाचार प्रगति का आधार है, इसलिए शिक्षा के सभी बदलाव व समाधान, इसके हितधारी-वर्गों के बहुलतावादी-स्वभाव, आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, चिन्ताओं एवं विवशताओं से परे नहीं होने चाहिए। इस दृष्टि से नयी सदी के शिक्षक-शिक्षा संस्थानों को अपने कमांड एरिया की अपेक्षाओं को मद्देनज़र रखते हुए, उसे स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक संदर्भों से तालमेल बैठाना होगा साथ ही वैधानिकता व आवश्यकताओं के पटल पर अपनी एक ब्रांड इमेज बनानी होगी। तभी जाकर हम एक व्यापक, गतिशील, उत्तरदायी, संवेदनशील, मूल्यपरक एवं नवाचारी शिक्षक-शिक्षा का शंखनाद कर पायेंगे

संदर्भ

यादव, एस.के., *'इनोवेशन इन एलीमेंट्र टीचर एजूकेशन'*, यूनिवर्सिटी न्यू एआईयू, नई दिल्ली, वाल्यूम 46, नं. 45, नवंबर 2008

'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005,' एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, 2006

सिंह, अनिता, *'अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ : एक दृष्टि'*, छत्तीसगढ़ विवेक, 2011

गोयल, डी.आर. एंड छाया, *'इनोवेशन इन टीचर एजूकेशन,'* जर्नल ऑफ इंग्लिस, साइंस एंड मैनेजमेंट एजूकेशन, वाल्यूम-1, 2010

तिवारी शंकर प्रसाद, *'भारत में शैक्षिक सुधार हेतु गठित प्रमुख आयोग/समितियाँ'*, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, जनवरी-2011.

पांडेय सरोज, *'प्रोफेशनलाइजेशन ऑफ टीचर एजूकेशन इन इंडिया : अ क्रिटिक ऑफ टीचर एजूकेशन करीकुलुम रिफोर्म्स एंड अफैक्टिवनेस'* एनसीईआरटी, नई दिल्ली, 2011

लोढ़ा, जितेन्द्र, *'अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान के नये आधार : एक सुझाावात्मक विवेचना'*, विद्या मेघ, मेरठ, अप्रेल-मई, 2005.

'पोजीशिन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप आन टीचर एजूकेशन फॉर करीकुलुम रिनुअल' एनसीईआरटी, नई दिल्ली, 2006

'इनोवेशन इन टीचर एजूकेशन: इंटरनेशनल प्रैक्टिसेज टू क्वालिटी असुरेंन्स', एनएएअ, बंगलुरु, इंडिया, मार्च 2011

एलिजाबेथ ल्यू एंड एलीशन प्रीस, *'क्वालिटी आफ एजूकेशन एंड टीचर लर्निंग : ए रिव्यू आफ लिट्रेचर'*

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का औचित्य और स्वरूप

रविन्द्र कुमार पाठक*

सारांश

*भाषा बहु-समर्थ संरचना है। हमारी मति व कृति का अधिकांश उसी के जरिये या उसी में व्यक्त होता है। भर्तृहरि ने उसकी क्षमता के बारे में यहाँ तक घोषणा कर दी है कि जगत् में ऐसा कोई प्रत्यय या विचार नहीं है, जो भाषा के अधीन या उस पर आश्रित नहीं है- **'न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।'** ('वाक्यपदीयम्') इन्सान की भाषा सीखने की प्रवृति जन्मजात होती है। अपने भाषिक समाज में रहते हुए वह भाषा सुनता है, भाषिक प्रयोग देखता है, मन ही मन उसका विश्लेषण करता है और इस तरह से भाषा नियमों को आत्मसात् करते रहता है। इसी प्रक्रिया से निरन्तर गुजरते, वह नियमबद्ध व्यवहार के रूप में कोई भी भाषा सीखता है।*

भाषा एक व्यवस्था है

हर भाषा संप्रेषण की एक नियमबद्ध व्यवस्था है, जिसके संरचनात्मक व अर्थपरक पक्ष हैं। भाषा मूलतः ध्वनियों (और उससे बने शब्दों/वाक्यों) की अर्थ-विशेष से संबद्ध व्यवस्था है। साथ ही, हर भाषा में वाक्यगत शब्दों/पदों और शब्दागत वर्णों/ध्वनियों के आने का एक निश्चित क्रम होता है। हर भाषा की खास शब्द-सम्पदा (डिक्शनरी) होती है तथा उस के साथ जो सब से बड़ी चीज होती है, वह है उसकी व्याकरणिक संरचना।

हम जो बाह्य जगत में भाषिक व्यवहार (बोलना, लिखना) करते हैं, उसका आधार है मन में बैठी हुई **भाषा-व्यवस्था**, जिसका स्वरूप स्मृतिमय होता है। मन में स्थित 'भाषा-व्यवस्था' शब्द व अर्थ के संबंध (मानसिक शब्दकोश) तथा व्याकरणिक संरचना

* सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, जी.एल.ए. कॉलेज, डाल्टनगंज (झारखंड) 822102
ई-मेल: rkpathakaubr@gmail.com

के रूप में होती है।[1] किसी समुदाय के सभी सदस्यों की चेतना में भाषा-विशेष की यह व्यवस्था कायम रहती है, जिसके आधार पर उनका 'समस्त भाषिक व्यवहार' (भाषण-श्रवण, लेखन-पठन, चिन्तन आदि) होता है। कोई व्यक्ति (वक्ता/प्रयोक्ता) अपने मानस में अवस्थित इसी **भाषा-व्यवस्था** या **भाषा-संरचना** के आधार पर कोई भाषिक प्रयोग करता है, जिसका लक्ष्य होता है- सामने वाले व्यक्ति/समाज (श्रोता/ग्रहीता) के मन में स्थित उसी प्रकार की भाषा-संरचना को सुगबुगाना। उसी के आधार पर श्रोता/ग्रहीता वक्ता/प्रयोक्ता के कथन/लेखन का तात्पर्य ग्रहण कर पाता है, यानी सम्प्रेषण का कार्य सम्पन्न होता है। यह व्यवस्था स्थिर नहीं, जड़ नहीं, देश व काल के सापेक्ष परिवर्तनशील है।

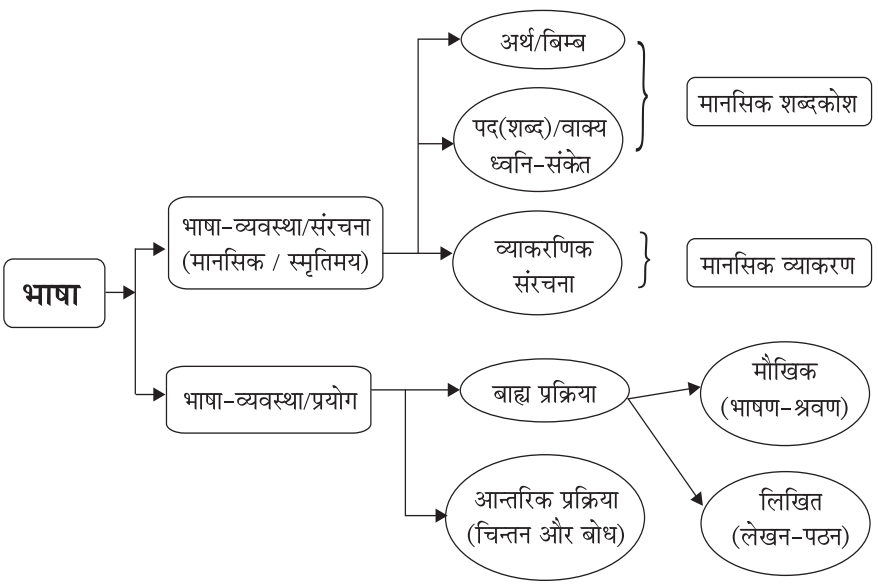

[1] अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक चॉम्स्की के मत के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा किसी (व्याकरणिक) संरचना-विशेष का नाम नहीं है, बल्कि मनुष्य की चेतना में निहित भाषिक क्षमता के रूप में भाषा एक संभावना है। इसी क्षमता के बल पर मानव अनन्त रूप में भाषा का उत्पादन या प्रयोग कर सकता है- अनन्त प्रकार की संरचना या शैली में वाक्य बोल-लिख या समझ सकता है। सृजनशीलता के तहत यदि कोई ऐसा भी प्रयोग कर दे, जो प्रचलित भाषा-संरचना से हट कर हो अथवा विवेचित व्याकरण की दृष्टि में विचलित हो, तो भी व्याकरण उसे अपनी उसी व्याख्या में समाहित करने की चेष्टा करता है, जो प्रचलित भाषा-संरचना के सन्दर्भ में की गयी है, जब कि वैसा विचलन हर बार व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना से किया गया भाषा का अभिनव प्रयोग होता है। ऐसे प्रयोग जब थोक मात्रा में सामने आ जाते हैं और उन्हें जब मौजूदा व्याकरण अपनी काया में समाहित कर पाने में असमर्थ होता है, तब उसका स्वरूप बदलना पड़ता है। वही कहलाता है, भाषा-संरचना के परिवर्तित होने पर व्याकरण का परिवर्तित होना। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि चॉम्स्की का दोष केवल यही है कि उन्होंने व्यक्ति आधारित चेतना को देखा, जबकि भाषा मूलत: समाज-संरचना के सापेक्ष परिवर्तनशील है। यह व्यक्तिगत विचलन से नहीं बदलती।

भाषा-व्यवहार मूलत : वाक्यात्मक

हम जानते हैं कि भाषा सम्प्रेषण की व्यवस्था है, परन्तु ध्यातव्य यह है कि सम्प्रेषण वाक्य में होता है। भाषाविज्ञान के एक सिद्धान्त के अनुसार इंसान की अभिव्यक्ति की न्यूनतम सार्थक इकाई वाक्य ही है, क्योंकि वह वाक्यों में ही सोचता है और अपनी मानसिक प्रक्रिया को आवश्यकता व इच्छा के अनुसार वाक्य के रूप में अभिव्यक्त करता है, चाहे वाक्य एक पद का ही क्यों न हो, चाहे वह अनेक पदों का हो या अनुच्छेद भर का (यानी 'प्रोक्ति' का रूप)। यानी, भाषिक व्यवहार या सम्प्रेषण की न्यूनतम इकाई वाक्य से कम हो ही नहीं सकती। वाक्य से नीचे उतरने पर अर्थ की समग्रता ही खण्डित हो जाती है।

शब्द का बोध्य अर्थ कई बार एक-एक वस्तु का रूप न होकर पूर्ण अभिप्राय (विचार/भाव) के रूप में भी होता है। एक उदाहरण सामने रखकर विचार करते हैं, जिस में वक्ता व श्रोता आमने-सामने हैं और भाषिक प्रयोग का रूप 'संलाप' (बातचीत) का है-

– स्त्री की स्थिति आज कैसी है?
– अच्छी।
– बिल्कुल अच्छी?
– नहीं। पहले से अच्छी।
– कैसे?

इस प्रयोग में आए 'अच्छी', 'कैसे' आदि शब्द/पद वाक्य-स्तरीय अर्थ देते हैं। 'अच्छी' का अर्थ सन्दर्भ-निरपेक्ष 'अच्छी' मात्र नहीं है, बल्कि 'स्त्री की स्थिति आज अच्छी है' का एक पूरा अर्थ देता है यह पद। इसी तरह, किसी संलाप या एक मुखी कथन में आए 'जा', 'उठ', 'गया', 'पधारिये' आदि एककी पद भी वाक्य स्तरीय अर्थ देते हैं। कौन पढ़ रहा है? क्या खरीद लाये? रमेश क्या बना रहा है? इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में सुनाई पड़ने वाले 'सलमा', 'किताब', 'चावल', 'गाय' आदि भी वाक्य-स्तरीय अर्थ देते हैं। इस के साथ, जब हम किसी को संबोधित करते हैं (रजनी!, डेविड! आदि) तो संबोधित पद एक वाक्य का अर्थ देता है, जिसका बोध्य यह भाव होता है कि 'ओ रजनी/डेविड! मैं तुझसे कुछ कह रहा/रही हूँ, वह सुनो' या 'मैं तुझ पर खुश/नाराज हूँ' आदि। इसी तरह अभिवादन के प्रसंग में 'प्रणाम! नमस्ते! आशीष!' आदि कहना भी पूरे वाक्य का अर्थ (मैं नमस्ते कर रहा/रही हूँ।' आदि) देता है।

इन वाक्यों के संदर्भ में हम सहज ही समझ सकते हैं कि सम्प्रेषण हेतु हम कोई भी पद या शब्द प्रयुक्त करें, वह अर्थ के लिहाज से वाक्यात्मक ही होता है, क्योंकि वक्ता के मन में उसके प्रयोग के समय उस पद के आगे-पीछे एक समग्र-अर्थमय सन्दर्भ होता है, जिसका बोध कराने के लिये ही वक्ता वह अकेला पद बोलता है। उसी कारण, श्रोता

भी उस एकाकी पद को एक वाक्यगत अर्थ में ग्रहण कर पाता है।

भाषा सीखने के क्रम में ऐसा देखा गया है कि पहले वर्ष के अन्त तक अव्यक्त और अस्पष्ट ध्वनियां शिशु की व्यक्त और स्पष्ट ध्वनियाँ (शब्द) बनने लगती हैं। पहले वर्ष में इस तरह वह चार-पाँच शब्द बोल लेता है। पहले वह शब्द, बाद में दो शब्दों के कुछ वाक्य प्रकार आदि। दूसरे वर्ष में उसका शब्द-भंडार बढ़ कर दो-चार सौ शब्दों तक का हो जाता है। साथ ही, भाषा-विशेष (जिस भाषिक समुदाय में वह रहता है, उस) की व्याकरणिक व्यवस्था भी उस के वाग्व्यवहार में बनने लगती है। पर, इसका यह मतलब नहीं कि बच्चा ध्वनि से शब्द और शब्दों से वाक्य बनाना सीख रहा होता है। अपने मन में वह जो कुछ सोचता है, वह वाक्यार्थ ही होता है, जिसे सम्प्रेषित करने की कोशिश करता है। किन्तु, वागिन्द्रिय, धारणा-शक्ति आदि से जुड़ी कई प्रकार की अपनी असमर्थताओं के चलते वह व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण वाक्य नहीं बोल पाता। वस्तुतः मन में हर बार वह वाक्य ही बोल रहा होता है, पर उच्चारण में वह प्रकट नहीं हो पाता और हमें उस के वागंग अक्सर टूटे-फूटे शब्दों का उच्चारण करते दिखते हैं। विकास-क्रम में वह अपनी असमर्थताओं से धीरे-धीरे छुटकारा पाते जाता है, जिसे हम (ध्वनियाँ जोड़कर शब्द और शब्द जोड़कर उनके वाक्य बनाना सीखते हुए) उसका भाषा सीखना कहते हैं किन्तु, जैसे कि स्पष्ट है, भाषा सीखने का उसका क्रम वाक्य से ध्वनि की ओर होता है।

इस प्रसंग में बच्चे और बड़े में अन्तर यही होता है कि बड़े जहाँ भाषिक दृष्टि से समर्थता (व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से पूर्ण वाक्य उच्चरित करने की क्षमता होने) के बावजूद, शैली या लाघव के लिये एक पदीय या अधूरे (अध्याहृत) वाक्य बोलते हैं, वह भी किसी पूर्व-उपस्थित संदर्भ में ही; वहीं बच्चे बिना किसी पूर्व-संदर्भ के अपनी उक्त असमर्थता के चलते ऐसे प्रयोग करते हैं। पर, जो भी ऐसा प्रयोग करे, एक बात स्पष्ट करे कि हर बात गहन संरचना के स्तर पर पूरा वाक्य आकार लेता है (जैसे- 'देखो, गाय खड़ी है', मैं आप को नमस्ते कर रहा/रही हूँ', 'मुझे रोटी दो' आदि), लेकिन बाहरी संरचना यानि उच्चार तक आते-आते वह अधूरा या विकृत (जैसे- 'गाय', 'नमस्ते', 'रोटी/लोती' आदि) हो कर रह जाता या रख दिया जाता है।

बोध के स्तर पर हम वाक्य ही सोचते हैं, ध्वनि तो सब से अन्त मे आती है। बच्चा जब पहली साँस लेता है, तो उस समय से ही आसपास सम्प्रेषण के (वाक्यमय) संसार में मुखातिब होता है। वह उसे महसूस करता है, उसी में खुद सम्प्रेषण करना चाहता है। आसपास बोल रहे जनों का अनुकरण करना चाहता है। उस क्रम में अधूरे रूप में 'लोती' (रोटी) आदि बोल पाता है।

उसके प्राकृतिक बोध में सब से पहले वाक्य ही आता है – उस की घटक इकाइयों

का विश्लेषण/विखण्डन करते हुये, वह शब्द और अन्त में ध्वनि तक पहुँचता है। वह उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार बच्चे या हम सब के प्राथमिक बोध में 'दूध' या कोई फल समग्र रूप में आता है, उस के अणु-परमाणु तक तो सबसे आखिर में (और वह भी ज्ञान या विश्लेषण-क्षमता के अत्यधिक विकास बाद) हम पहुँचते हैं। जिस चीज से सीधे-सीधे जीवन-प्रयोजन सिद्ध हो, वह पहले और उसके घटक बाद में - वाक्य पहले, ध्वनि बाद में - फल पहले, उसके रेशे बाद में।

व्याकरण : यह तो स्पष्ट हो चुका है कि कोई भाषा अन्ततः कुछ खास नियमों के अनुसार बनी व्यवस्था है। उन्हीं नियमों को समेकित रूप में '**व्याकरण**' कहा जाता है। वह व्याकरण अव्यक्त/अमूर्त होता है, जो भाषा-भाषियों की सामूहिक चेतना में विद्यमान 'भाषा-व्यवस्था' के अन्तर्गत समाविष्ट रहता है। उसे भाषा के विशेषज्ञ भाषा-विश्लेषण के (शास्त्र के) रूप में व्यक्त/मूर्त करते हैं। आमतौर पर उसी मूर्त रूप को '**व्याकरण**' कहा जाता है।

भाषा को पढ़ना-पढ़ाना उसके प्रयोक्ता (समाज) को पढ़ना-पढ़ाना है— उसके भाषिक व्यवहार/आदतों के जरिये उसके सामूहिक मन में विराजमान (भाषा वैज्ञानिक व सामाजिक) भाषिक संरचना को समझना-समझाना है। उस संरचना-विशेष को अन्य समूह की मनःस्थ संरचना-विशेष के विभेदन को समझना-समझाना और इस माध्यम से अन्ततः समाज को समझना-समझाना और उसमें जो स्तरीकरण/भेदभाव/समस्याएँ या अलोकतंत्र है, उसको फोकस करते हुए, समाज की इन जटिलताओं को क्रमशः शिथिल करते हुए निर्मूल करना ही भाषा-शिक्षण का वास्तविक उद्देश्य है।

भाषा सीखना और व्याकरण सीखना अलग-अलग चीजें

भाषा में व्याकरण है, पर भाषा केवल व्याकरण नहीं है, उस से कुछ अधिक है। उसमें '**व्याकरण + शब्दकोश**' के साथ '**सामाजिक संदर्भ**' (मुहावरेदारी आदि) भी है। इसी से भाषा सीखना और व्याकरण सीखना अलग-अलग चीजें हैं। यानी, भाषा सिखलाने की विधि और व्याकरण सिखलाने की विधि में थोड़ा-सा अन्तर होगा। यद्यपि भाषा सीखना बिना सचेत व्याकरण-शिक्षण के, केवल समाज में रहकर भी सम्भव है। पर, व्याकरण सिखलाने को भाषा सिखलाने की पहली व जरूरी सीढ़ी बनाया जा सकता है। इसके साथ, यह सतत ध्यातव्य है कि **व्याकरण शिक्षा पर्याप्त नहीं है**। इस से तो भाषा के ढाँचे या अस्थिपंजर भर का बोध हो पाता है। असली है— भाषा के मांस, नस-नाड़ी, रक्त, प्राण-संचार का रहस्य समझना, यानी अर्थ वैज्ञानिक बारीकियों का बोध और भाषाई कौशलों को साधना, जो किस भाषिक समाज में रहने और अधिकाधिक संदर्भ में भाषा-व्यवहार करने में सिद्ध होता है।

व्याकरण-शिक्षण का तात्पर्य : व्याकरण की शिक्षा नहीं, उसका बोध

व्याकरण सिखाने का मतलब कुछ तयशुदा नियमों के डब्बे थमा देना नहीं है, जिसमें प्रशिक्षु उदाहरण चुन-चुन कर अँटाते हैं। व्याकरण-शिक्षण का मतलब न ही व्याकरण जैसी किसी चीज का निर्माण ही है। किसी भाषा के संदर्भ में उसके व्याकरण का निर्माण ही क्यों? बनाना क्या है? वह तो बना हुआ ही है। वह भाषा में स्वत: कार्यरत है। एक नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में हम भाषा का प्रयोग करते हैं, उन नियमों को ही तो समेकित रूप से व्याकरण कहते हैं। उन नियमों का उद्‌घाटन कर देना ही व्याकरण-रचना है। स्पष्ट है कि इसके लिये वस्तुनिष्ठ होने की जरूरत है, किन्तु क्या कोई सर्वांशत: वस्तुनिष्ठ हो सकता है? शायद नहीं। इसीसे हर का व्याकरण भी कुछ अंशों में अलग-अलग हो जाता है। पर, भाषा-विशेष में प्राकृतिक तौर पर कार्यरत जो व्याकरण है, यानी जो निमयों की आवश्यकता है, उसके प्रति **सचेत** व **संवेदित करना** ही व्याकरण-शिक्षण है या नहीं रहा है, तो होना चाहिए।

व्याकरण-ज्ञान का वास्तविक प्रयोजन है भाषा के आन्तरिक रहस्यों का बोध। इस बोध का भी अगला लक्ष्य है – भाषाई कौशल और सृजनशील का विकास। इस तरह से कहा जा सकता है कि व्याकरण-शिक्षण का लक्ष्य है भाषा का शिक्षण और भाषा-शिक्षण का लक्ष्य है वह सब कुछ जो भाषा में व्यक्त होता है।

अर्थात्, व्याकरण सिखलाने का उद्देश्य है– अनन्त प्रकार की शैलियों में, अनन्त प्रकार के वाक्य समझने-बोलने-लिखने की क्षमता का विकास करना – समाज के हित, मानवता के हित में, मानवीय दृष्टि से साधु वाणी का प्रयोग करने की क्षमता का विकास-व्याकरणिक (कथित) शुद्धि-अशुद्धि के पचड़े से परिचित कराते हुए, उसे सामाजिक शुद्धि तक ले जाना। फिर, भाषाई दक्षताओं (सुनना, सुनकर समझना - बोले गये का स्वन/स्वनिम-विभेदन > बढ़ना > लिखना) का विकास।

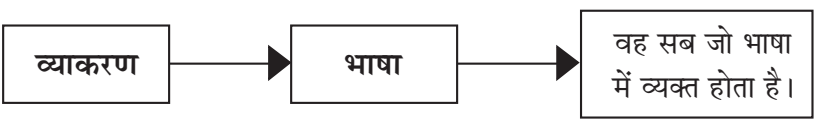

यहां ध्यान देने की बात यह है कि भाषा में कोई प्रयोग न शुद्ध होता है, न अशुद्ध – बस किसी संदर्भ-विशेष में (खास समय या स्थान के लिए) मानक या अमानक हो सकता है। व्याकरण-शिक्षण इस रूप में तो कतई नहीं होना चाहिए जिस के परिणामस्वरूप प्रशिक्षु भाषा-प्रयोग को शुद्ध-अशुद्ध की रूढ़ि मानने लगे। यदि ऐसा हुआ, जिसकी

अक्सर आशंका रहती है, तो यह व्याकरण-शिक्षण का बाईप्रोडक्ट होगा। सच तो यह है कि व्याकरणिक संरचना को साधन सर्वोपरि नहीं, सर्वोपरि है सम्प्रेषणीयता का विकास। यानी, विशुद्ध व्याकरण नहीं, 'व्याकरण और रचना' की ओर ले जाना व्याकरण-शिक्षण का लक्ष्यीभूत है। भाषा की व्याकृति/विश्लेषण भी सम्प्रेषणीय वाक्यों की व्याकृति/विश्लेषण है, उसके लिये व्याकरणिक पूर्णता वाली किसी इकाई का विश्लेषण हर समय अनिवार्य नहीं होता। कारण, कई बार हम व्याकरणिक दृष्टि से अधूरे वाक्यों के द्वारा भी अपना भाव/विचार-मन्तव्य आदि को पूरा-पूरा सम्प्रेषित कर लेते हैं।[2] जैसे– ऊपर आए वाक्य *'स्त्री की स्थिति आज कैसी है?'* के उत्तर-रूप में आया वाक्य 'अच्छी' व्याकरणिक दृष्टि से अपूर्ण हो कर भी सम्प्रेषण की दृष्टि से पूर्ण है। विद्यार्थी में बोलने या पढ़ने की प्रवृत्ति विकसित करना सबसे अहम् है। व्याकरणिक दोष या विभाषा वह लहजे से संबद्ध किसी कथित त्रुटि के उपहास से डर कर यदि प्रशिक्षु बोले ही नहीं अथवा कक्षा में कुछ भी बोलने में सकुचाने लगे, तो उस का भाषाई विकास कुण्ठित होने लगता है। इसका उस पर मनोवैज्ञानिक असर बहुत बुरा होता है, जिससे उसकी बाकी संभावनाएँ या क्षमताएँ भी कुण्ठित हो जाती हैं। यह भी व्याकरण-शिक्षण का बाईप्रोडक्ट है।

व्याकरण-शिक्षण की विधि

भाषा सिखलाने का एक महत्वपूर्ण रास्ता व्याकरण-शिक्षण से होकर जाता है। पर, व्याकरण का उचित तरीका क्या हो - यह गम्भीर विचार का विषय है। अब तक व्याकरण पढ़ाने-सिखलाने का जो सबसे प्रचलित तरीका है, वह निगमन विधि से प्रेरित रहा है। यह विधि दोषपूर्ण है– उसमें नियम (सामान्य तत्व) से उदाहरण (विशेष) की ओर गमन होता है। पर, हमारी चेतना के लिए जो सबसे प्राथमिक है, वह है विशेष। उसके आधार पर एक सार्वनिष्ठ तत्व (सामान्य तत्व) सबसे अन्त में आता है। यानी, उदाहरण हमारे बोध में पहले आते हैं, नियम या परिभाषा बाद में। परम्परागत विधि इसके ठीक उलट है। इससे व्याकरण भाषा / संदर्भ में निहित न होकर व्याकरण के मन में केन्द्रित लगने लगता है। उस विधि में एकमुखी उपदेशात्मकता होती है। यह ऊबाऊ व बोझिल होती है, जिसमें गतिशीलता की सरसता का अभाव होता है। उस विधि से सीखा गया व्याकरण भाषा-प्रयोग के वास्तविक संदर्भों से कटा भी होता है, जिससे व्याकरण-प्रक्रिया का कुछ भी अता-पता नहीं लगता। अर्थात् उसमें व्याकरण भाषा-केन्द्रित

[2] पर साहित्य में क्या कहा जा रहा है? से कम महत्वपूर्ण नहीं है यह कैसे कहा जा रहा है?- अर्थात, बर्तन और खाद्य-सामग्री समान रूप से महत्वपूर्ण है। अत: साहित्य की समीक्षा में भाव-पक्ष के साथ उस के प्रस्तुतीकरण की शैली (वाक्य-योजना, शब्दावली आदि) का भी परीक्षण अनिवार्य है।

नहीं, व्याकरण के मन में केन्द्रित लगता है। इस तरह, व्याकरण साधन न रहकर, साध्य हो जाता है। जबकि व्याकरण सिखलाना लक्ष्य नहीं होना चाहिए। लक्ष्य होना चाहिए – भाषा में रुचि जगाना, भाषा सिखलाना या कम-से-कम भाषिक कौशलों के विकास या भाषा-प्रयोग में दक्ष बनाना। साथ ही, उसमें बोध की मानसिक प्रक्रिया (जो वाक्य से ध्वनि की ओर होती है) के उलटे क्रम में (ध्वनि से वाक्य की ओर) यात्रा होती है।

उचित विधि : संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण

एन.सी.ई.आर.टी (दिल्ली) के तत्वाधान में तैयार की गयी **'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005'** में भाषा-शिक्षण के बारे में जो कहा गया है वह व्याकरण-शिक्षण के लिये भी समान रूप से उपादेय है– 'भाषा तब सीखी जाती है, जब वह भाषा के रूप में नहीं पढ़ायी जाती, बल्कि संदर्भों से जोड़कर उसे पढ़ाया जाता है।''

संदर्भ के यहां दो अर्थ संभव हैं :

1. भाषा-प्रयोग (वाक्य-प्रयोग) का संदर्भ
2. सामाजिक संदर्भ (जिस में भाषा-प्रयोग होता है)

पहले में पूरा भाषा-व्यवहार या पूरा भाषिक माहौल आ जाता है, चाहे वह बच्चे की तुतलाहट के रूप में हो या विद्वान के धीर-गम्भीर वक्तव्य के रूप में, चाहे रेडियो-टी.वी. की आवाज, मोबाइल के संदेश, सिनेमा के पोस्टर, अखबार के पन्ने, पाठ्य-पुस्तक, चिटठी, आसपास की बातचीत आदि के रूप में हो अथवा *'सावन का महीना पवन करे सोर'* के रूप में हो, या *'आकाश में पंछी फ्लाइंग, भंवरा बगियन में गाइंग..'* के रूप में हो।

दूसरे के बारे में कह सकते हैं कि जिस घरेलू/सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक और इन सबसे निर्मित भाषिक परिवेश में हम रहते हैं, उसी के प्रति सचेत करते, उसी को आधार बनाकर, उसमें निहित व्याकरण को समझने की क्षमता विकसित करना व्याकरण-शिक्षण की सही विधि है। संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का अर्थ केवल इतना नहीं है, बल्कि व्याकरणिक परिभाषाओं और नियमों में निहित सामाजिक आशयों या संदर्भ में उद्घाटन से भी उसका संबंध है। यानी, एक तरफ सामाजिक/भाषाई संदर्भ में व्याकरण की तलाश और दूसरी तरफ मौजूदा व्याकरण में सामाजिक संदर्भ की तलाश करना – उभयमुखी इस प्रक्रिया का नाम है **'सन्दर्भ में व्याकरण-शिक्षण'**। अर्थात्, इस विधि में **संदर्भ में व्याकरण और व्याकरण में संदर्भ** की युगपत, प्रणाली को माध्यम बनाना है, जिसमें भाषा में निहित सामाजिक आशयों को पढ़ते हुये व्याकरण-शिक्षण भी अन्तर्विष्ट है।

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण से व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दोनों तरह के लाभ हैं।

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का व्यावहारिक औचित्य

1. संदर्भ में व्याकरण सिखलाने से प्रशिक्षु को यह बोध होगा कि कोई भी भाषिक/व्याकरणिक तत्व वास्तविक भाषा-प्रयोग के धरातल पर कैसे कार्य करता है?
2. संदर्भ से टकराती भाषा में उस की रुचि जगती या बढ़ती है। संदर्भ में व्याकरण सीखना अपने आप में रुचिकर होता है।
3. संदर्भ उसके मन में संस्कार की तरह बैठा होता है, इसी से संदर्भ में कुछ भी (व्याकरण) सीखना उसके लिए अलग से अभ्यास-साध्य नहीं रह जाता। उसे लगता है कि व्याकरण कहीं बाहर से नहीं लाया गया है।
4. जीवित प्रयोगों के संदर्भ में व्याकरण को समझना उसकी भाषा को जीवन्त व सर्जनात्मक बनाने में मददगार होता है।

बोध की मानसिक प्रक्रिया के संगत

(क) **समस्या से बात शुरू करना–** यह विधि परम्परागत विधि की तरह निष्कर्ष पहले नहीं रखती, बल्कि इसके अंतर्गत किसी संदर्भ में समस्या को प्रस्थान-बिन्दु बनाकर आगे बढ़ा जाता है।

(ख) **वाक्य से ध्वनि की ओर यात्रा–** भाषा-प्रयोग (वाक्य) के संदर्भ में होने से सीखने की दिशा वाक्य से ध्वनि की ओर होती है, जो हमारे बोध प्रक्रिया के संगत है। अर्थात् वाक्य के रूप में उपस्थित भाषा-व्यवहार विद्यार्थी या अध्यापक का प्रस्थान-बिन्दु होता है (और वह आधार भी होता है सीखने का)।

इस तरह से व्याकरण की शिक्षा द्वारा-

(1) प्रशिक्षु भाषा-विशेष की संरचना को समझ सकता है।

(2) संरचना समझकर वैसा नया प्रयोग खुद कर सकता है।

(3) उस संरचना का अतिक्रमण करके नयी-नयी दिशा में नयी-नयी संरचना उत्पन्न कर, भाषा को और सृजनशील बना सकता है।

संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का सैद्धान्तिक औचित्य

(क) **व्याकरण-प्रक्रिया के संगत :** संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण उस प्रक्रिया का अनुगमन करता है, जिसमें किसी भाषा का (किताबी) व्याकरण बनता है, मतलब अमूर्त व्याकरण का मूर्तीकरण जिस व्याकरण-प्रक्रिया से होता है, लगभग वही प्रक्रिया (भाषा-प्रयोगों को समझने और उसके विश्लेषण) संदर्भ में व्याकरण सीखने की। व्याकरण-प्रक्रिया कुछ इस प्रकार होती है:

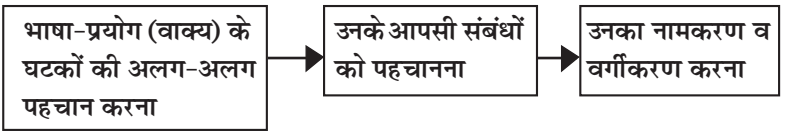

(ख) **व्याकरणिक कोटियाँ या परिभाषाएँ संदर्भ-सापेक्ष :** संदर्भ में ही व्याकरण सीखना-सिखलाना इसलिए भी उचित है, क्योंकि व्याकरणिक कोटियों का बोध/निर्धारण या व्याकरणिक परिभाषाओं का बनना भाषा-प्रयोग के संदर्भ में ही संभव है। बिना प्रयोग के किसी शब्द-विशेष की व्याकरणिक कोटि या वर्ग बताना कभी-कभी कठिन या असम्भव हो जाता है।

कुछ उदाहरण:

1. ***टहलना*** अच्छा व्यायाम है। — *(क्रियार्थक) संज्ञा*
   तुम सुबह उठकर **टहलना**। — *क्रिया*

2. रावण के ***दशानन*** थे। — *द्विगु समास*
   रावण ***दशानन*** था। — *कर्मधारय या कर्मधारयवत्*
   दशानन जा रहा है। — बहुब्रीहि समास
   राम ***जानकीबल्लभ*** हैं। — कर्मधारयवत्
   जानकीवल्लभ जा रहे हैं। — बहुब्रीहि समाज
   वह ***दशमुख*** है। — कर्मधारयवत्
   दशमुख आ गया। — बहुब्रीहि समास
   मेरी ***दाल-रोटी*** का जुगाड़ ही बहुत मुश्किल से हो पा रहा है। - समाहार द्वन्द्व
   वह ***दाल-रोटी*** खाकर आया। — इतरेतर द्वन्द्व

3. रामेश्वर ***अच्छा*** लड़का है। — विशेषण
   वह ***अच्छा*** पढ़ता/पढ़ती है। — क्रियाविशेषण (अव्यय)
   मैंने ***अच्छे-अच्छों*** को देखा है। — संज्ञा
   यह तो बहुत ***बुरा*** हुआ। — भाववाचक संज्ञा
   लालच ***बुरी*** बला। — विशेषण
   हमें बुराई से नफ़रत करनी चाहिए, **बुरे** व्यक्ति से नहीं। — विशेषण
   सच-झूठ का फैसला होने में अब देर नहीं। — भाववाचक संज्ञा
   मेरा ***सच*** अलग और तेरा अलग। — जातिवाचक संज्ञा ('सच' के प्रकार का उल्लेख
   सच बात हर किसी की मान लेनी चाहिए। — विशेषण

4. ***पतंग*** उड़ रही है। — कर्त्ता

वह ***पतंग*** उड़ा रहा/रही है। – कर्म
कपड़े सिल रहे हैं। – कर्त्ता (ऐसे प्रयोगों में किशोरीदास वाजपेयी 'कपड़े' को 'कर्म-कर्त्ता' कहते हैं।)

5. **गया गया गया।** – बिना प्रयोग के यह बताना असम्भव था कि 'गया' शब्द की कोटि क्या है? रूप तो एक ही है, पर कार्य में भेद है, इसी से पहला 'गया' संज्ञा/कर्त्ता है, दूसरा संज्ञा/कर्म है और अन्तिम क्रिया है। इस अन्तर का पता अलग संदर्भ में जानने पर होगा। गया कब/कहाँ गया? कौन गया/गयी? वे गया गये। गया पटना जायेगा। आदि अलग-अलग प्रयोगों से यह पता चलेगा कि किस 'गया' का प्रकार्य क्या है?

6. ***गाय*** चर रही है। (एकवचन) – जातिवाचक संज्ञा
गायें चर रही हैं। (बहुवचन) – जातिवाचक संज्ञा
गाँधी के जोड़ का दूसरा कौन है? – व्यक्तिवाचक संज्ञा
इस देश में कई ***गाँधी*** होंगे। – जातिवाचक संज्ञा
जयचन्द्र ने मातृभूमि के साथ घात किया। – व्यक्तिवाचक संज्ञा
इसे देश में कई ***जयचन्द्र*** छुपे हुये हैं।– जातिवाचक संज्ञा

'गाय' आदि (कथित जातिवाचक) शब्दों का अर्थ जाति है या व्यक्ति- यह विवाद प्राचीन भारतीय दर्शन (न्याय-मीमांसा) व व्याकरण में बहुत लम्बा चला है। पाणिनि तक आते-आते यह स्थिर हो गया कि ऐसे किसी शब्द का अर्थ व्यक्ति व जाति दोनों हैं। फिर भी, ऐसे किसी प्रसंग में जहाँ *(एक) गाय चर रही है'* में भी गाय शब्द को व्याकरण जातिवाचक ही मान कर चला है। अर्थ की दृष्टि से इसका विचार करें तो भी यह कहना सही होगा कि भले ही चरने वाली गाय एक व्यक्ति के रूप में पहचानी गयी है, लेकिन उसकी इस पहचान का आधार भी उसमें निहित वह सामान्य 'गायत्व' (यानी जाति) ही है। इस गायत्व के अर्थ से युक्त 'गाय' शब्द किसी जगह प्रयुक्त हो, जातिवाचक ही मानी गयी। पर, 'गाय' अगर किसी का नाम ही हो जाये, तो चाहे किसी प्रयोग में वह आए, अपने 'गायत्व' वाले सामान्य अर्थ में विरहित होकर ही आएगा, तब वह व्यक्तिवाचक कहलाएगा। इसी तरह *'रीता गयी'* में 'रीता शब्द मनुष्यत्व या स्त्रीत्व का जातिगत सामान्य अर्थ न देकर, खास व्यक्ति का अर्थ दे रहा है और उस अर्थ का आधार उसका कोई सामान्य गुण (रीतात्व जैसा) नहीं है, अतः 'रीता' व्यक्तिवाचक है।

यह तो हुआ अर्थपरक विवेचन। व्याकरण को तो रूप के आधार पर बात कहनी चाहिए।

गाय चर रही है।
गायें चर रही हैं।

संदर्भ में व्याकरण का गलत तात्पर्य ग्रहण करने वाले कहेंगे कि 'गाय' शब्द प्रथम प्रयोग के संदर्भ में व्यक्तिवाचक है और दूसरे के सन्दर्भ में जातिवाचक। यह ठीक नहीं है। कारण कि सन्दर्भ का मतलब समग्रता है, न कि विच्छिन्न, टुकड़े को हम संदर्भ कहेंगे। भाषा–व्यवहार के समस्त संदर्भों को मिलाकर यह निर्धारित किया गया है या किसी जाना चाहिए कि 'गाय' शब्द जातिवाचक है। 'गाय' जैसे शब्दों को 'रीता' जैसे शब्दों से अलग कोटि (जातिवाचक या गणनीय) में रखने का व्याकरणिक तर्क यह है कि *कोई संज्ञा जब सहज रूप या सरलता से और बिना कोशीय अर्थ बदले, एकवचन से बहुवचन और बहुवचन से एकवचन में ढल सके अथवा स्वाभाविक रूप से संख्यावाचक शब्दों से अन्वित होने की क्षमता रखे, तो वह जातिवाचक/गणनीय होती है।* जैसे– ***नदी*** बह रही है। ***नदियाँ*** बह रही हैं। (स्पष्ट है कि एक प्रयोग से तय नहीं होगा कि *नदी* शब्द वचन बदलता है कि नहीं। इसलिये, संदर्भ का मतलब भाषा–प्रयोग से पूरे संदर्भ से है।) एक और उदाहरण है–

राजा जा रहा है।
राजा जा रहे हैं।

इन दो प्रयोगों में राजा के वचन बदलने की सूचना क्रिया से मिलती है। हाँ, राजा शब्द में विकास नहीं हुआ। आगे देखते हैं–

राजाओं ने कहा।

यहाँ आकर स्पष्ट हुआ कि *राजा* शब्द विकारग्रस्त हुआ। वैसे शर्त विकारग्रस्त होने से अधिक वचन/बहुत्व या संख्या शब्द से अन्वित होने की है।

चार ***राजा*** गये। चार ***राजाओं*** ने कहा।

स्पष्ट है कि 'राजा' में संख्यात्मक शब्द लग सकते हैं। सारे प्रयोगों में कहीं उसका कोशीय अर्थ नहीं बदला है। इसी कारण 'राजा' शब्द जातिवाचक है।

'रीता', 'हीरा' 'गाँधी', 'जयचन्द' आदि भी कभी–कभी बहुत्व या वचन–परिवर्तन का अर्थ ग्रहण कर लेते हैं, पर अपना कोशीय अर्थ (व्यक्ति–विशेष का नाम) बदल कर। तब, ये व्यक्ति–विशेष की जगह कुछ सामान्य गुणों या प्रवृत्तियों के वाचक बन जाते हैं। जैसे– उपर्युक्त उदाहरणों में 'गाँधी' या 'जयचन्द' शब्द जहाँ संख्या या बहुत्व से अन्वित हुआ, वहाँ वह 'गाँधीत्व' या 'जयचन्दत्व' का अर्थ देने लगा, तभी वह जातिवाचक कहा जायेगा। अन्यथा, आमतौर पर वह व्यक्तिवाचक है। ऐसे शब्दों की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। बहुवचन या संख्यात्मक शब्दों के साथ जाने की। भाववाचक या द्रव्यवाचक संज्ञा का भी यही हाल है। वह भी वचन या संख्या शब्द से अन्वित होने

की सहज प्रवृत्ति नहीं रखती। (अपनी माटी से ***मुहब्बत*** करो।) मुझे कई तरह की **मुहब्बतों** से पाला पड़ा। यहाँ मुहब्बत के प्रकार हैं, यानी अर्थ का अन्तर आया है। साथ ही, व्याकरणिक लक्षण है बहुवचन से संयुक्ति। इसी से यह जातिवाचक हुआ।

रमेश जा रहा है। — व्यक्तिवाचक
मेरी क्लास में कई रमेश हैं। — जातिवाचक

दूसरे वाक्य में 'रमेश' के साथ बहुत्व का, प्रकार का अर्थ संलग्न है, जिसका व्याकरणिक लक्षण है- बहुवचन या बहुत के वाचक संख्यात्मक शब्द से अन्विति।

संस्कृत में ऐसे ही व्यक्तिवाची 'राम' आदि के रूप जातिवाची अर्थ में कल्पित किय गये हैं- **रामः, रामौ, रामाः** आदि। एक राम, दो राम, अनेक राम? व्यक्तिवाची के लिए एकवचन वाला रूप है, शेष जातिवाचक बनने पर उपयुक्त हो सकते हैं।

ईश्वर एक है। या, ***ईश्वर*** एक ही है, पांच-दस नहीं। — व्यक्तिवाचक
एक ***ईश्वर*** गया, (दूसरा जाने वाला है)। — जातिवाचक

पहले उदाहरण में संख्यावाचक शब्द अन्वित होने पर भी 'ईश्वर' शब्द व्यक्तिवाचक है। कारण, 'एक' या 'पांच-दस नहीं' शब्द ईश्वर की विशेषता को परिभाषित कर रहा है, वह विधेय विशेषण के रूप में क्रिया का अंग बन रहा है। दूसरे में 'एक' शब्द ईश्वर के बहुत्व/प्रकार का सूचक है, जो उद्देश्य-विशेषण के रूप में हैं यानी, 'ईश्वर' शब्द जिस खास अर्थ (परमात्मा) में आता है, यहाँ उस का अर्थ बदला हुआ है।

इससे निकलकर सामने आया कि *कोई शब्द अपना बिना कोशीय अर्थ बदले बहुवचन में आने में सक्षम हो, या उद्देश्य-विशेषण के रूप में संख्यावाचक से अन्वित होने में सक्षम हो, तो वह जातिवाचक संज्ञा होता है।* पर, 'इस गाँव में ईश्वर पाँच हैं।' में भी 'ईश्वर' शब्द जातिवाचक है। इसका परीक्षण वाक्य का रूप थोड़ा बदल देने से होगा- 'पाँच ईश्वर इस गाँव में हैं।' अब कोई समस्या नहीं रही। यह स्पष्ट हो गया है कि संख्यावाचक शब्द ('पाँच') उद्देश्य-विशेषण के रूप में आया है। यानी, संख्यावाचक शब्दों से अन्वित होना मात्र किसी संज्ञा के जातिवाचक होने का प्रमाण नहीं। किसी प्रयोग या वाक्य में संदर्भगत अर्थ देखना चाहिए कि बहुवचन की संभावना बन रही है कि नहीं अथवा उसमें बहुवचन के बीज निहित हैं कि नहीं। उद्देश्य-विशेषण के रूप में संख्यावाचक शब्द के आने पर बहुवचनत्व असंदिग्ध होता है।

इस ब्रह्माण्ड में ***पृथ्वी*** एक नहीं है। (जातिवाचक संज्ञा)

ओ मानव! तुम्हारे पास अनेक ज्ञान हैं, अनेक शास्त्र और सिद्धांत हैं, पर मत भूलो कि एक ही ***पृथ्वी*** है। (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

पहले वाक्य में बहुवचन के बीज निहित होने से *पृथ्वी* जातिवाचक है, दूसरे में ऐसी बात नहीं है इसलिए *पृथ्वी* व्यक्तिवाचक है।

मेरे तो आप ही ***ईश्वर*** हैं, वह नहीं। – जातिवाचक

मेरा तो तू ही ***ईश्वर*** है, वह नहीं। – जातिवाचक

पहले में ईश्वर के लिए क्रिया ('हैं') बहुवचन नहीं आया, बल्कि 'आप' के लिए है। ('आप' आदरार्थक है, आदरार्थक में बहुवचन का विधान जो है।) 'कई ईश्वर हैं।' में 'हैं' 'ईश्वर' के लिए आया है।

तो निष्कर्ष यही निकला कि भाषा-व्यवहार के समस्त संदर्भों को मिलाकर यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई शब्द जातिवाचक है या व्यक्तिवाचक? कभी-कभी ऐसा होता है कि अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग कोटि होती है, जैसा कि पीछे के उदाहरण में 'टहलना' के साथ हुआ। समस्त संदर्भों को देखने पर ही यह पता चला कि 'टहलना' कहाँ संज्ञा है, कहाँ क्रिया? हाँ, किसी शब्द-विशेष की आमतौर पर जो कोटि कही जाती है, वह भी पूरे संदर्भ में अधिक प्रयोग को देखकर। अन्यथा हर शब्द का प्रयोग-संदर्भ देखकर ही तात्कालिक कोटि निर्धारित होगी। किसी खास जगह पर कोई शब्द बहुवचन बना हुआ है, तो उस खास जगह पर वह जातिवाचक संज्ञा है। कुछ और उदाहरणों को सामने रखते हैं:

पृथ्वी के प्राकृतिक उपग्रह का नाम ***चन्द्रमा*** है। (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

चन्द्रमा पृथ्वी का प्राकृतिक उपग्रह है। (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

शनि के पास ***चन्द्रमाओं*** की संख्या सबसे अधिक है। (जातिवाचक संज्ञा)

सूर्य के चारों ओर पृथ्वी घूमती है। (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

इस ब्रह्माण्ड में न जाने कितने ***सूर्य*** हैं। (जातिवाचक संज्ञा)

हर तारा एक ***सूर्य*** है। (जातिवाचक संज्ञा)

इन सबसे भी यही अर्थ निकल रहा है कि कोई शब्द बिना प्रयोग के या निरपेक्ष रूप से किसी कोटि में डाला नहीं जा सकता। यदि हम किसी शब्द-विशेष को निरपेक्ष रूप से संज्ञा या उसका कोई खास भेद कह रहे हैं, तो उसका आधार है, हमारा वह बोध – जो भाषा में उसके समस्त प्रयोगों में अधिकतर प्रयोगों को देखकर बना है। फिर, वह बोध भी हमारे ज्ञान या ज्ञान के विकास के सापेक्ष होता है। इसलिए, व्याकरणिक कोटि/वर्ग का निर्धारण समय-सापेक्ष और प्रयोग/सापेक्ष चीज़ है। पहले पता था कि एक ही चन्द्रमा है, अब पता चल रहा है कि अनेक हैं। ऐसी स्थिति में हमारे भाषा-प्रयोग में उक्त प्रकार की स्थितियाँ आती हैं, जिससे व्याकरणिक कोटि का निर्धारण प्रभावित होता है।

ठोस, द्रव, गैस

पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं– ***ठोस, द्रव, गैस।*** (भाववाचक संज्ञा)

लोहा ***ठोस*** चीज है। (विशेषण)

खून ***द्रव*** पदार्थ है। (विशेषण)

खून ***द्रव*** है। (भाववाचक संज्ञा)

हवा ***गैस/गैसीय*** पदार्थ है। (विशेषण)

हवा ***गैसों*** का मिश्रण है। (जातिवाचक संज्ञा)

ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आदि ***गैसें*** हैं। (जातिवाचक संज्ञा)

ऑक्सीजन एक ***गैस*** हैं। (जातिवाचक संज्ञा)

जिस तरह गैस किसी खास पदार्थ का नाम है, उसी तरह *ठोस* या *द्रव* किसी खास पदार्थ का नाम नहीं है, एक अवस्था-विशेष भर है। इसलिए, इनका जातिवाचक होना सामान्य स्थिति में संभव नहीं है। हाँ, जब इनका बहुवचनात्मक प्रयोग हो ही जाए, तो जातिवाचक माना जायेगा। जैसे- दुनिया में बहुत सारे *ठोस* और *द्रव* हैं। (जातिवाचक)

पानी-

पानी पीओ। (द्रव्यवाचक संज्ञा) – पानी एक खास पदार्थ का नाम है।

लोहा पिघल कर ***पानी*** हो गया। (भाववाचक संज्ञा) – पानी एक खास अवस्था का नाम है।

वह ***पानी-पानी हो गया।*** (पूरी संरचना मुहावरा है)।

आँधी, तूफान, वर्षा, भूकम्प, हवा आदि।

ऐसा समझा जा सकता है कि प्राकृतिक घटनाओं के नाम या तो *व्यक्तिवाचक* या *जातिवाचक संज्ञा* कोटि में आएंगे। पर, यहाँ भी संदर्भ के सापेक्ष विचार करना समीचीन होगा।

हवा बह रही है। (द्रव्यवाचक / अगणनीय संज्ञा)

हवा गैसों का मिश्रण है। (द्रव्यवाचक / अगणनीय संज्ञा)

भारत में पुरवा, पछुआ जैसी न जाने कितनी ***हवाएँ*** बहती हैं। (जातिवाचक संज्ञा)

आँधियाँ चलें या ***बिजलियाँ*** गिरें, हम रुकने वाले नहीं हैं। (जातिवाचक संज्ञा)

भ्रष्टाचार की ***आँधी*** आ गयी है। (भाववाचक संज्ञा)

राजनीति में सिर्फ वादों और भाषणों की ***वर्षा*** हो रही है। (भाववाचक संज्ञा)

क्रान्ति

देश में ***क्रान्ति*** आ गयी। (भाववाचक संज्ञा)

विश्व में कितनी ***क्रान्तियाँ*** हुईं। (जातिवाचक संज्ञा)

अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम है। (व्यक्तिवाचक संज्ञा)

अनेकार्थक शब्द भी संदर्भ-सापेक्ष

'जल' आमतौर पर अनेकार्थक शब्द नहीं माना जाता, क्योंकि उसका अर्थ पानी मात्र है। यहाँ लक्षणा-व्यंजना वाली साहित्यिक अनेकार्थता की बात नहीं हो रही है, बल्कि अभिधार्थ में अनेकार्थता की बात हो रही है। 'गधा' शब्द का लक्ष्यार्थ मूर्ख, ज़लील, गिरा हुआ आदि भी है, पर 'गधा' अनेकार्थक नहीं माना जाता।

सामान्य प्रयोग में कोई शब्द एकाधिक अर्थ दे, तब उसे अनेकार्थक माना जायेगा। जैसे- 'पानी'। 'रहिमन पानी राखिये...' में 'पानी' साहित्यिक प्रयोग से अनेकार्थक नहीं हुआ, बल्कि तीन अलग संदर्भों ने उसके तीन अलग अभिधार्थ को खोल भर दिया है।

फल – खाद्य फल, परिणाम।

वर्ण – रंग, जातिगत वर्ग

वर्ग – आकार-विशेष, क्लास, सामाजिक वर्ग।

साहित्यिक पंक्तियाँ अनेकानेक संदर्भों (देश, समय, पात्र, स्थितियाँ आदि) के बदलने पर अर्थ बदलती हैं। पर, व्याकरण संदर्भ में होता है। अतः अनेकार्थक शब्द की अवधारणा वाक्य-प्रयोग के संदर्भ में ही अर्थ रखती है।

'**जल**' का प्रयोग- 1) **जल** बह रहा है। 2) आग **जल** रही है। तुम मेरी उन्नति पर **जल** रहे हो। प्रयोग-विशेष के संदर्भ में ही असली अनेकार्थता व्याख्येय है। वैसे प्रयोग हुए बिना अर्थ खुलेगा कैसे? शब्दकोशीय अनेकार्थता तो प्रतिनिधि-स्वरूप है, असली अनेकार्थता (प्रयोग-सापेक्ष) की।

इस तरह स्पष्ट होता है कि अनेकार्थक शब्द की अवधारणा भी वाक्य/प्रयोग-सापेक्ष है। सही बात तो यह है कि वाक्य-प्रयोग में ही असली और विस्तृत अनेकार्थता है।

अनेकार्थक वाक्य- शब्द की तरह वाक्य भी अनेकार्थक होते हैं। हिन्दी का एक वाक्य है-

'यह सीता का चित्र है।'

इसके कम-से-कम तीन अर्थ सम्भव हैं-

(क) इस चित्र में सीता चित्रित है।

(ख) इस चित्र में रचनाकार सीता है।

(ग) इस चित्र की मालकिन सीता है।

उपसर्ग व संज्ञा का विभेदन-

अति-महत्वाकांक्षी होना ठीक नहीं। (उपसर्ग)
वहाँ भाषण की ***अति*** हो गयी। (संज्ञा)
भारत में ***प्रति*** व्यक्ति दैनिक आय बीस रुपये से कम है। (उपसर्ग)
किताब की चार **प्रतियाँ** लाओ। (संज्ञा)

विस्मयादि बोधक अव्यय और भाववाचक संज्ञा का विभेदन-

'हाय! / ***आह!*** अब नहीं सहा जाता। (विस्मयादिबोधक अव्यय)
गरीब की ***आह*** / ***हाय*** कभी व्यर्थ नहीं जाती। (भाववाचक संज्ञा)

भाषा की नियमबद्धता व भाषाई बारीकियों के प्रति संवेदित करना

भाषा में निहित नियमबद्धता के प्रति सचेत व संवेदित करना संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का असली प्रयोजन है। इसके माध्यम से ***व्याकरण सूचना की वस्तु नहीं रह जाता, बल्कि अनुभूति का विषय*** हो जाता है। इसका बड़ा उद्देश्य है– भाषाई बारीकियों के प्रति जागरूक व संवेदित करना, ताकि समाज के अर्थवैज्ञानिक बारीकियों को समझ सकें और तदनुसार प्रयोग कर सकें- वैसी, उसके आस-पास या उसे अतिक्रमित कर नयी संरचना रच सकें। जैसे- व्युत्पत्ति का बोध कराने से नवीन शब्द-रचना की सूझ मिलती है तथा नये अर्थ-बोध की सम्भावना भी विकसित होती है। इससे शब्द में निहित अन्यान्य आशयों (मूल अर्थ, सामाजिक अन्तर्विरोध / अन्याय आदि) को पढ़ना संभव होता है। इन आशयों को पकड़कर हम उस दिशा में सोचने और नया खोजने-रचने को प्रेरित होते हैं। जैसे- 'पर्यावरण = परि+आवरण – इस व्युत्पत्ति को जान लेने पर 'पर्यावरण; के सूखे अर्थ की जगह धरती के चारों ओर के किसी प्राकृतिक आवरण का बोध होगा, फिर उस पर सोचने से हमारे भीतर पर्यावरण-चेतना भी सुगबुगाने लगेगी। इस प्रकार के शिक्षण द्वारा शुद्ध भाषाई संवेदना के साथ सामाजिक संवेदनशीलता भी जगाना संभव है। जैसे- पहले लिंग-नियम समझा कि चाचा +ई = चाची, फिर इससे समझा कि 'चाचा' पूर्वसिद्ध है, इसलिये 'चाचा' से 'चाची' के व्युत्पत्ति की गयी। लेकिन, 'मौसी' पूर्वसिद्ध है, इसलिए उसीसे ''मौसा' की व्युत्पत्ति की जाएगी। आखिर 'बहनोई' की व्युत्पत्ति 'बहन + ओई' से ही तो की जाती है। यह तर्क खोज लिया। पर, देखा कि यहाँ भी लोग 'मौसा' + ई के सहारे 'मौसी' की व्युत्पत्ति करते हैं। 'लड़का' व 'लड़की' तो सहसिद्ध हैं, तब भी 'लड़का' से 'लड़की' ही क्यों व्युत्पन्न होता रहा? इससे अर्थ निकाला कि समाज की मानसिकता किस प्रकार पुरुष-वर्चस्व से आक्रान्त है। इसी तरह अब तक के व्याकरणिक विवेचन, कोटिकरण तथा वैयाकरणों के प्रतिपादनों व उदाहरणों में निहित पितृसत्ता, जातिवाद, वर्ग-मानसिकता को भी खंगालना भी संदर्भ में व्याकरण-शिक्षण का ही एक रूप है। पूरी भाषा के वर्गगत, लिंगगत, जातिगत आदि

चरित्रों की जाँच करना इस प्रकार के शिक्षण का बड़ा निहितार्थ है। **इसके व्याकरण-दर्शन को जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन तक ले जाने में मदद मिलती है।**

इस तरह, व्याकरण-शिक्षण से हम अपेक्षा करते हैं कि वह दो तरह की संवेदना का विकास करे :

1. शुद्ध भाषाई संवेदना : उक्त 'पर्यावरण' की व्युत्पत्ति से जगा बोध और नयी सूझ उसी का उदाहरण है। इसी तरह संस्कृत में 'नयन' शब्द 'नी' धातु में 'ल्युट्' यानि 'अन' प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न हुआ है। 'नी' धातु का अर्थ 'ले जाना' होता है। आँखें जिस वस्तु को दिखाती हैं, वस्तुत: हमें उस तक ले ही तो जाती हैं। ऐसा जान लेने के बाद 'नयन' शब्द का हमारा बोध वही नहीं रहेगा, जो पहले था। कहा जाता है कि वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु को वनस्पतियों में जीवन की खोज करने की प्रेरणा उनके संस्कृत पर्यायवाची 'शस्य' से भी मिली। 'शस्य' की व्यत्पत्ति 'शस्' धातु में 'यत्' प्रत्यय से की गयी है। 'शस्' धातु का एक अर्थ मार डालना या हिंसा करना भी है। हिंसा तो उसी की होगी, जिसमें जीवन हो। इस सोच ने भी बसु को उक्त खोज के लिए उत्तेजना दी- ऐसा कहा जाता है।

व्याकरण-शिक्षण के दौरान शुद्ध भाषाई संवेदना जगाने के ही कुछ अन्य पक्ष हैं।

(क) **व्याकरणिक-अव्याकरणिक घटना की पहचान:** भाषा में प्रयोग यानी वाक्य के संदर्भ में ही घटी कोई घटना ही वास्तविक है, वही व्याकरणिक घटना है। इससे बाहर घटी घटना यानी वाक्य-प्रयोग में आने से पहले किसी भाषाई तत्व के साथ हुई कोई प्रक्रिया अव्याकरणिक घटना है। व्याकरण की परिभाषाएँ या कोटियाँ वाक्य-रूपी कक्ष में घटित घटनाओं/प्रक्रियाओं के सापेक्ष खड़ी होती है। इसी से 'पत्ता गिरता है', 'पतंग उड़ती है' या 'चावल पकता है' जैसे वाक्यों में आये 'पत्ता', 'पतंग' व 'चावल' को कर्त्ता माना जाता है, न कि लौकिक अर्थ का विचार करके (पतंग खुद नहीं उड़ता, उसे कोई उड़ाता है- उड़ाने वाला ही कर्त्ता होगा) इन्हें कर्म माना जायेगा। प्रस्तुत वाक्य की क्रिया- 'उड़ती है', इसका जो संचालक है वही तो कर्त्ता होगा- इसी से 'पतंग' कर्त्ता है। हाँ, 'श्यामा पतंग उड़ाती है' में 'श्यामा' कर्त्ता है, 'पतंग' कर्म है, क्योंकि यहाँ क्रिया है- 'उड़ाती है'।

(ख) **'को' परसर्ग एवं 'का/की/के' के प्रयोग की विलक्षणताएं :** ये जिस वस्तु के लिये आते हैं, उसकी पहले से ही उपस्थिति (पूर्व सिद्धी) का संकेत कर देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वाक्य की क्रिया द्वारा किसी वस्तु की सिद्धि या आविर्भाव किया जा रहा हो, तब वस्तु-नाम के साथ से नहीं लग सकेंगे। जैसे- *महादेवी वर्मा ने गीत बनाये।* मतलब गीत अस्तित्व में लाया गया, अत: कर्म गीत 'को'-रहित आया पर, *महादेवी वर्मा ने गीत को बनाया।* मतलब गीत पहले से

मौजूद था, जिसका कुछ संस्कार किया गया। *भरे बाजार से लड़की का अपहरण हुआ।* लड़की में 'का' लगा है, तो स्पष्ट है कि वह पूर्व-विद्यमान है, हाँ 'अपहरण' क्रिया 'हुआ' के द्वारा उपस्थित किया गया।

इसके साथ, 'को' के साथ यह भी विलक्षणता है कि वह अचेतन या क्षुद्रचेतन के साथ नहीं आता अथवा किसी कर्म को उपेक्षित करना हो तो भी उसे 'को'-रहित रखा जाता है। जैसे- *मैंने लड़का देखा।* इसका मतलब हुआ कि देखा गया लड़का वक्ता की नज़र में कोई खास स्थान नहीं रखता। यहाँ 'लड़का' का आशय लड़का-भर है। पर, जब यह कहा जाए कि *'मैंने लड़के को देखा'* तो इसका मतलब है- किसी खास लड़के को देखा।

(ग) **सक्रिय-अक्रिय शब्दकोश के प्रति समझ बढ़ाना :** हमारे मानस में जो भाषा व्यवस्था कायम है, उसमें 'शब्दकोश' भी होता है। शब्दकोश का कुछ हिस्सा अधिक सक्रिय होता है, अर्थात् हमारे बोलचाल में ज़्यादा प्रयुक्त होता है। शेष हिस्सा हमारी बोलचाल में कभी-कभार ही (वह भी अक्सर लेखन में) आ पाता है। वह प्रायः अक्रिय जैसा हमारे मानस में पड़ा रहता है। उदाहरण-स्वरूप, हमारे मानस में 'पानी' शब्द है और उसका पर्यायवाची 'जल' है। इस संदर्भ में, 'पानी' सक्रिया शब्दकोश का हिस्सा है, 'जल' अक्रिया शब्दकोश का।

(घ) **वाच्य-भेद की पहचान क्रिया के अर्थ के सापेक्ष :** हिन्दी में कोई वाक्य किस वाच्य का है, इसकी पहचान क्रिया के अर्थ से होगी, न कि क्रिया के रूप से। जैसे- *'रजनी ने कंप्यूटर चलाया'* वाक्य में क्रिया का रूप *'चलाया'* तो कर्म (कंप्यूटर) के अनुसार है, पर यहाँ क्रिया 'चलाने' की है, जो कर्त्ता ('रजनी') के प्रति उन्मुख है। इसी आधार पर इसे 'कर्तृवाच्य' कहा जायेगा। रूप से 'प्रयोग' का संबंध है अर्थात्, यहां 'कर्मणि प्रयोग' है। *रंजीत से टी.वी. चलायी जाती है।'* वाक्य में 'कर्मवाच्य' है, क्योंकि क्रिया के रूप में *'चलवायी जाती है'* कर्म ('टी.वी.') का अनुगमन करता है। 'मैं सोता हूँ' में क्रिया 'सोने' की है, जो कर्त्ता ('मैं') के प्रति उन्मुख है, इसीलिए यहाँ 'कर्तृवाच्य' है। पर, *'मुझ से सोया जाता है'* में कर्म की न स्थिति है, न उसकी कोई संभावना, क्योंकि यह अकर्मक क्रिया है। इस कारण, यह वाक्य न 'कर्तृवाच्य' है, न 'कर्मवाच्य'। यह 'भाववाच्य' है।

(ङ) **संदर्भ में व्याकरण :** शिक्षण के अन्तर्गत प्रयोग द्वारा यह भी बोध कराना चाहिए कि कविता या पद्य में व्याकरण के नियम शिथिल होते हैं।

2. **सामाजिक संवेदनशीलता :** भाषाई संवेदना को सामाजिक संवेदना तक ले जाना व्याकरण-शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक प्रयोजन है। यह **'व्याकरण के समाजशास्त्र'** की दिशा में पहल है।

हिन्दी के व्याकरणिक तत्वों वचन, पुरुष व लिंग द्वारा स्तरों व भेदभाव में विभक्त हिन्दी समाज की सूचना प्राप्त होती है।

(क) **वचन** द्वारा– हिंदी में वचन द्वारा आदर–अनादर की सामाजिक कोटि भी व्यक्त होती है। जैसे– मालिक आ गये। मालिक आ गया। पहला प्रयोग तब किया जाता है, जब सेवक के भीतर अपने मालिक के प्रति सम्मान की भावना है। दूसरा प्रयोग मालिक के प्रति सेवक की हिकारत को दर्शाता है।

(ख) **पुरुष** द्वारा– वचन की तरह पुरुष के द्वारा भी हिन्दी भाषा सामाजिक स्तरों की सूचना देती है अथवा वक्ता व सम्बोध्य व्यक्ति के बीच के संबंध की निकटता–दूरी आदि की। जैसे– यह काम तू पूरा कर। तुम करो। आप कीजिये। – पहला प्रयोग दो स्थितियों में किया जा सकता है। उसके लिए, जिसका सामाजिक दर्जा सबसे नीचे समझा जाता है अथवा उसके लिये, जिससे सबसे अधिक वक्ता अपनापन महसूस करता है। इसी तरह, दूसरा व तीसरा प्रयोग बढ़ते हुए सामाजिक स्तर अथवा घटते हुए अपनापन को प्रतिबिम्बित करते हैं।

(ग) **लिंग** द्वारा– पितृसत्तात्मक समाज में लिंग से कोमल–कठोर, कमजोर–मज़बूत की कोटियाँ भी व्यक्त होती हैं। प्रयोक्ता यदि स्वयं पितृसत्तात्मक भेदभाव की मानसिकता से मुक्त हो चुका हो, तो भी आदत की मजबूरी में वह लिंग–भेदी भाषा में कह/लिख सकता है। कारण, भाषा अधिरचना है, जो देर से बदलती है। उससे वक्ता/प्रयोक्ता से अधिक, उसकी मनोरचना के जरिये उसकी सामाजिक संरचना का पता चलता है। उदाहरण के तौर पर हिन्दी–व्याकरण के लिंग सम्बन्धी नियम या व्यवस्था पुरुषवादी है– यह संकेतक है उस समाज का, जिसमें हिन्दी भाषा की व्यवस्था निर्मित हुई है या उसका व्याकरण बना है। जैसे–

(i) व्युत्पत्ति–प्रकरण में कुछ खास प्रत्यय (जिन्हें स्त्री प्रत्यय कहा जाता है) हिन्दी–संस्कृत–अंग्रेजी सहित कई भाषाओं में होते हैं, जो पुलिंग शब्दों में लगकर स्त्रीलिंग शब्द व्युत्पन्न करते हैं। जैसे– लड़का + ई = लड़की, बाल + आ = बाला, भाषा की यह व्यवस्था (जिसका संधान व्याकरण ने किया है) स्त्रीलिंग को पुलिंग के सामने कमतर आंकने की मानसिकता की देन है। पर, लोक में चल रही शब्द–निर्माण की प्रक्रिया की व्याकरण द्वारा यह निर्दोष व्याख्या मात्र नहीं है। क्योंकि शब्द–रचना में लोक कितना भी स्वतंत्र हो, पर उसकी प्रक्रिया को 'पुलिंग शब्द + स्त्रीप्रत्यय' के रूप में विवेचित और इस तरह पुलिंग शब्द को मूल और स्त्रीलिंग को व्युत्पन्न (गौण) बताने का दोष तो व्यारकण ने ही अपने सिर पर लिया है। वह चाहता तो लड़का व लड़की दोनों को मूल शब्द मान सकता था अथवा द्विमुखी व्युत्पत्ति प्रक्रिया के तहत लड़का से लड़की और लड़की से लड़का

को व्युत्पन्न प्रतिपादित कर सकता था। जब 'अध्यक्ष' और 'अध्यक्षा' दोनों शब्द मौजूद या सम्भव हैं, तो भी स्त्री के भी कार्य को 'अध्यक्षता' ही क्यों कहते हैं, महादेवी वर्मा ने सभा की अध्यक्षता की। अध्यक्षाता क्यों नहीं?

(ii) व्याकरण की **एकशेष**–प्रक्रिया में आमतौर पर स्त्रीलिंग को पुलिंग में विलीन कर दिया जाता है, पर इसका उलटा प्रायः नहीं होता। जैसे- बच्चे खेल रहे हैं या कई आदमी गए आदि का प्रयोग कर हम मान लेते हैं कि इन में बच्चियाँ और औरतें भी आ गयीं। इस स्थिति में बच्चियाँ या औरतें का प्रयोग कर इनमें बच्चे या आदमी को भी निहित मानने में हम कठिनाई का अनुभव करते हैं। भाषा में कार्यरत यह प्रवृत्ति पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के उस विराट दोष की छाया है, जिसके तहत स्त्री को कहीं जगह नहीं दी गयी है। हर जगह 'भाईचारा' शब्द चलता है, लगता है कि बहन रहती ही नहीं दुनिया में।

(iii) हिन्दी-भाषा में लिंग की अनिश्चितता होती है, तो वहाँ केवल पुलिंग का प्रयोग होता है। जैसे- कौन गया? वह कौन था? इसकी जगह यदि कौन गयी? वह कौन थी? आदि का प्रयोग कर दें, तब लिंग की अनिश्चितता नहीं रह जाती। इतना स्पष्ट हुआ रहता है कि जाने वाली या वह स्त्री है। सवाल केवल इसलिये पूछा जा रहा है ताकि यह पता चले कि जाने वाली या उस स्त्री की पहचान क्या है?

(iv) जहां कहीं लिंग-विशेष जानकर भी उसे प्रकट करना जरूरी न समझा जाए, वहां पुलिंग का ही प्रयोग किया जाता है। किसी पुरुष को ही नहीं, किसी स्त्री को भी आते देखकर कहा जा सकता है - कोई आ रहा है।

(v) वाच्य प्रकरण में जहां क्रिया कर्ता या कर्म के प्रभाव से मुक्त हो जाती है। (यानी, किसी वाच्य के भाव प्रयोग में), वहाँ हिन्दी में पुलिंग-एकवचन क्रिया होती है। जैसे– रमेश ने खाया। रजनी ने खाया। रमेश ने साथियों को पुकारा। रजनी ने सहेलियों को पुकारा। यहाँ अब बैठा जाएगा।

(vi) अव्यय और क्रिया के विशेषण भी हिन्दी-व्याकरण में पुलिंग में सिद्ध माने गये हैं। राम अच्छा करता है। सीता अच्छा करती है। करने वाला चाहे स्त्री हो, या पुरुष, पर अच्छा ही करेगा, न कि कभी अच्छी करेगा। यही तो पुलिंगवाद है।

(vii) सभी क्रियार्थक भाववाचक संज्ञाएं हिन्दी में पुलिंग होती हैं। जैसे- पढ़ना अच्छा लगेगा। क्रियार्थक संज्ञा की रचना भी 'ना' पुंप्रत्यय से होता है, न कि 'नी' स्त्रीप्रत्यय से। ये पढ़ना, जाना आदि रूपों में होता हैं, न कि पढ़नी, जानी आदि।

(viii) समास में भी पुलिंग की विजययात्रा जारी है। जैसे- द्वन्द्व समास बनाने में घटक के रूप में भले ही स्त्रीलिंग पद की भी भूमिका हो, परन्तु समस्त पद पुलिंग में ही सिद्ध होता है। उदाहरणस्वरूप, राजा-रानी आए।

(ix) ऊनवाचक यानी छोटे या हीन अर्थ में किसी संज्ञा को ढालने के लिए उसे स्त्रीलिंग रूप में सिद्ध कर देना भी स्त्रीलिंग की हीनता का परिचायक है। जैसे– डिब्बा से डिबिया।

इन रूपों में हिंदी–व्याकरण में 'लिंग' नामक अवधारणा प्रतिष्ठित है। स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष को लेकर गुणों या सामाजिक व्यवहार के कोटिकरण की लिंगभेदी–अलोकतांत्रिक मानसिकता व्याकरण जैसे शास्त्र में भी प्रविष्ट हुई है, जबकि आमतौर पर समझा जाता है (और यह एक हद तक सही भी है) कि व्याकरण समाज के किसी भेदभाव के पूर्वाग्रह से मुक्त, स्वतंत्र व तटस्थ विवेचन का शास्त्र होता है। यह सच है कि भाषा के व्याकरण में व्याप्त 'लिंग' नामक अवधारणा सदियों से समाज में चल रही स्त्री–पुरुष मूलक विभेद–भावना का प्रतिबिम्ब है, पर साथ ही (जैसाकि समाज में रहा है, वैसा ही) पुलिंग का वर्चस्व भी स्त्रीलिंग पर दिखलाती है। यानी, पुलिंग के सामने स्त्रीलिंग को दोयम दर्जे का सिद्ध मानकर, 'लिंग की आवधारणा आकारवान हुई है।

जब व्याकरण का शिक्षण दिया जाये तो तरीका क्या हो? उक्त विचार–बिन्दुओं के प्रति प्रशिक्षुओं को जागरूक तो करना ही होगा। साथ ही, उन्हें इस बात के प्रति भी सचेत करना होगा कि व्याकरण के प्रयोगों में स्त्री को कमजोर, घरेलू, अबोध, देह–बोध/सौन्दर्य से ग्रस्त, खाना पकाती या पतिभक्ति (पति की दासता) करती आदि रूपों में ही उदाहरण बनाना आम है, जबकि पितृसत्ता की विविध गुलामियों की जकड़बन्दी से निकल कर सशक्त हो रही – पढ़ती, खेलती, कुश्ती करती, गाती, झूमती, नौकरी करती आदि स्त्री भी उदाहरण बनायी जा सकती है। कुछ नहीं तो, अन्तहीन संकटों व मज़बूरियों में पड़ी या डाली गयी, भूखी, पराश्रित, मनोवांछित मित्रता बनाने में मानमाफिक कपड़े पहनने तक को छछनती स्त्री उदाहरण बन सकती है। पर नहीं, व्याकरणों को ऐसा काहे को सूझेगा? हिन्दी–संस्कृत व अंग्रेजी के व्याकरणों में लड़की की सुन्दरता को इतना उदाहरण बनाया गया है कि पूछिए मत।

गाली या अपशब्दों के समाजशास्त्र पर गहराई से ध्यान देना भी भाषा के व्याकरण को कहीं न कहीं समाज के व्याकरण की ओर उन्मुख करता है। हिन्दी–समाज की गालियां लिंग और जाति संबंधी पूर्वग्रहों का ज्वलन्त प्रमाण हैं। हम बहुत वीभत्स गालियों की ओर रुख न करके एक आम प्रचलित गाली 'साला' को ही लेकर विचार करें, तो भी बात स्पष्ट हो जाती है। 'साला' व 'साली' यह रिश्तेदारी के शब्द हैं– पत्नी के क्रमशः भाई व बहन के लिए प्रयुक्त। पर, जब ये गाली रूप में किसी को कहे जाते हैं, तो वहाँ उसकी बहन या कल्पित बहन के प्रति अवचेतन में बैठी यौन–दुराचार की घृणित मंशा को ध्वनित करते हैं।

सामाजिक संवेदनशीलता के उद्‌बोधन का ही एक उदाहरण है समास को समझाने का

यह तरीका। 'गीता' में कहा गया है कि समास में द्वन्द्व श्रेष्ठ है। व्याख्याकारों ने इसका कारण बताया है कि उसमें दोनों पद प्रधान जो हैं। सच पूछो तो समास का प्रस्थान-बिन्दु 'द्वन्द्व' है। समास अर्थों या पदों के द्वन्द्व (अनेकता) को संपृक्त करने की क्रिया है। यानी द्वन्द्व से द्वन्द्वातीत होने का प्रयास। यह 'सामाजिकता' संस्कृति का मूल तत्व है। पर, सामासिक होने की प्रक्रिया में व्यक्ति को अपना व्यक्तित्व खोना पड़ता है, या किसी अन्य व्यक्ति में विलीन होना पड़ता है। सामासिकता के लिये जरूरी विलीनीकरण का यह रास्ता यदि सबके समान रूप से विलयन से बने, तब तो उसे 'सहयोग' कहते हैं, वह वरेण्य है। किन्तु, किसी व्यक्ति को अन्य में विलीन या विलुप्त होना पड़े अथवा अन्य के अर्थ शहीद होना पड़े, तो इसे 'सहयोग' नहीं, 'अधिग्रहण' कहेंगे। (हमारी विवाह-व्यवस्था इसी विसंगति पर खड़ी है- एक पुरुष के व्यक्तित्व में एक (या एकाधिक) नारी के व्यक्तित्व का सम्पूर्णतया विसर्जन होते आया है। क्या इससे कहीं खूबसूरत सामासिकता वह नहीं होगी, जो व्यक्तियों के व्यक्तित्व को भी समान तल पर ही खड़ी रखते हुये, उनकी संपृक्ति का भी विधान-आख्यान करे? (प्रेमचन्द की कहानी 'पंच-परमेश्वर' के अलगू और जुम्मन की दोस्ती की तरह, जिन में रीति-रिवाज, खान-पान आदि कुछ भी समान नहीं थे, केवल उनके विचार मिलते थे)। यही तो लोकतंत्र का मर्म है। समासों में 'द्वन्द्व' समास इसी तरह की घटना है। सभी पदों का व्यक्तित्व सुरक्षित रखते हुये सामासिकता का विधान। शायद यही वह तत्व है, जिससे 'गीता' में कहा गया- '**द्वन्द्वः सामासिकस्य च**'। या नहीं भी, तो 'गीता' की इस प्रकार की व्याख्या तो की ही जा सकती है। मतलब, की जानी चाहिए।

व्याकरण-रचना के समाजशास्त्र की पड़ताल

ऊपर हमने व्याकरण के समाजशास्त्र का संकेत किया है, इसी का अलग रूप व्यारकणशास्त्र (यानी अमूर्त व्याकरण के मूर्तीकृत रूप) के समाजशास्त्र पर विचार करना है। 'हिन्दी-व्याकरण (शास्त्र)' के समाजशास्त्र पर विचार भी 'सन्दर्भ में व्याकरण' का ही एक पहलू है। इस दिशा में कुछ विचार-बिन्दु अपेक्षित हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. हिन्दी का जो व्याकरण बना या बनता रहा है, वह किस हिन्दी का है? किस सामाजिक स्तर (वर्ग, जाति, लिंग, मजहब आदि) या क्षेत्र की हिन्दी का है? उस भाषा का इतिहास-भूगोल और समाजशास्त्र क्या है?
2. उसके प्रयोक्ता-समुदाय की क्या स्थिति है? उसका प्रयोग-क्षेत्र क्या और कैसा है? उसमें साहित्यिक या साहित्येतर रचनाओं की स्थिति आदि क्या है? व्याकरण के निर्माण यानी अमूर्त व्याकरण के मूर्तीकरण में किनका योगदान है? उनका वर्ग, जाति, लिंग, क्षेत्र संबंधी चरित्र क्या है? क्या हाशिए के समाज (स्त्री, दलित, आदिवासी आदि) का उस के निर्माण में कोई योगदान है? तो कितना है और नहीं तो क्यों नहीं है?

3. व्याकरण के शब्दों/पदों के वर्गीकरण–व्युत्पत्ति या व्याकरणिक कोटियों के निर्धारण–नामकरण–विवेचन आदि में वर्ग–क्षेत्र–लिंग–जाति–नस्लगत पूर्वग्रहों की क्या भूमिका रही है? उदाहरण स्वरूप, इस बात का परीक्षण करना कि देशज–विदेशज जैसे शब्द–भेद करने अथवा 'लिंग', 'पुरुष' आदि पारिभाषिक शब्द बनाने में व्याकरण का कुछ ऐसा ही चरित्र तो नहीं झलकता? जैण्डर की जगह 'लिंग' जैसे असमावेशी शब्द का प्रयोग व्याकरण के पुरुषवादी होने का एक संकेत हो सकता है। लिंग पुरुष–यौनांग है। उसकी जगह 'योनि' शब्द भी इस्तेमाल किया जा सकता था, जिसका अर्थ जीव विज्ञान व सांस्कृतिक अर्थ विज्ञान के लिहाज से दूर तक (जाति–प्रजाति तक) चला जाता है, जब कि 'लिंग' का अर्थ तो चिह्न तक ही सिमटकर रह जाता है।

4. व्याकरण के नियमों में समाज (उसका इतिहास, भूगोल, सामाजिक संरचना, संस्कृति के तमाम अंग, लोक व लोकाचार आदि) किस तरह झलक रहा है?

5. व्याकरणिक विवेचन एवं उस हेतु चयनित उदाहरणों में व्याकरण का संस्कार कितना हावी हुआ है? उसमें उसके सामाजिक व वर्गीय पूर्वग्रह/सोच की कितनी भूमिका है? उदाहरणस्वरूप, हिन्दी के यशस्वी वैयाकरण पंडित किशोरीदास वाजपेयी ने ('हिन्दी–शब्दानुशासन' में) 'लिंग' पर विचार करते हुए कहा है कि आत्मा तो ईश्वर के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है। परमात्मा स्वाधीन है, स्वतंत्र है। स्वतंत्रता की व्यंजना के लिए 'परमात्मा' पुलिंग में तथा पराधीनता के प्रदर्शन के लिये 'आत्मा' स्त्रीलिंग में है। वे उदाहरण देते हैं– '*लड़की पराया धन होती है।*' कामता प्रसाद गुरु भी '*पतिव्रता सीता*' जैसा उदाहरण देते हैं। सवाल है, हिन्दी–व्याकरण में राम, सीता आदि टिपिकल उदाहरण ही ज्यादा क्यों आते हैं? इन सबसे व्याकरण के मन में आर्यवाद या हिन्दूवाद, द्विजवाद, पुरुषवाद आदि के हावी रहने का संकेत क्या नहीं मिलता?

6. व्याकरणिक विवेचन की भाषा के समाजशास्त्र पर भी विचार करना होगा। (उदाहरणस्वरूप, रामदेव त्रिपाठी ने '**भोजपुरी का व्याकरण**' लिखा, पर उस के विवेचन की भाषा तत्सममय भोजपुरी रही) इसके साथ, उस भाषा में 'करता' के साथ 'करती' का भी कितना स्थान है? पूरे विवेचन में भाषा का यह लिंग– विकल्प कितना मौजूद है? विवेचन की भाषा की उक्त स्थिति और उसके कारणों पर विचार करना है।

7. हिन्दी के किसी या किन्हीं व्याकरणों के आधार पर उसके रचनाकालिक समाज को खँगालना, यानी व्याकरण–विवेचन, नियम, उदाहरण आदि के भीतर निहित रचना–काल/रचना देश के सामाजिक–सांस्कृतिक आशयों के साथ पूरे इतिहास–भूगोल का अन्वेषण करते हुये उस समाज को समुपस्थित लाना जिस तरह वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'अष्टाध्यायी' का ऐतिहासिक–समाजशास्त्रीय अध्ययन कर पाणिनि और

उसकी विवेच्य भाषा के देश-काल को '**पाणिनिकालीन भारतवर्ष**' पुस्तक में समग्र रूप में उपस्थिति किया, कुछ उसी तरह का प्रयास हिन्दी में भी किया जा सकता है।

8. हिन्दी-व्याकरण-रचना के इतिहास, उसके रचनाकारों की संख्या, अवस्थिति और उनके पूरे सामाजिक प्रोफाइल की जाँच करना।

प्रश्नानुकूल बनाना भी उद्देश्य

किसी संदर्भ में प्रश्न इस बात का प्रतीक माना जाना चाहिए कि प्रश्नकर्त्ता की चिन्तन की गाड़ी उस संदर्भ में चलनी शुरू हो चुकी है। उसका प्रश्न उसकी चेतना के उस बिंदु का प्रतीक है, जहाँ उसकी गाड़ी अटक चुकी है। निकलने पर समझ में आता है कि पूरा पथ क्या है? सार्थक व सटीक प्रश्न ही वह यान है, जो उत्तर के लोक में पहुँचा सकता है और बोध जगा व उसे जमा सकता है। उत्तर और कुछ नहीं, प्रश्न का ही विकोडन है। इसे ध्यान में रखकर ही व्याकरण के प्रश्न-अभ्यास बनाए जाने चाहिए।

विद्यालय में प्रवेश कर रहे शिशु या प्रशिक्षु के पूर्वज्ञान/बोध को प्रश्न के जरिये सामने लाना और नये बोध के धरातल के लिये उसे तैयार करना > तब समस्या से बात शुरू करना > शब्दार्थ-संबंध के ज़रिए भाषा की संचरना के बारे में प्रारम्भिक स्तर पर सचेत करना > भाषा में निहित व्याकरणिक बोध जगाना > भाषा में निहित सामाजिक संदर्भों के प्रति सचेत करना, उन्हें देखने की आदत डालना- सही तरीका होना चाहिए व्याकरण सिखलाने का। इसके लिए ढ़ेर सारी सार्थक गतिविधियाँ और परियोजना-कार्य भी अपेक्षित हैं। इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर इस आलेख को समापन का रूप देते हैं:

1. 'बात' का बहुवचन 'बातें' होता है, पर 'हाथ' का 'हाथें' नहीं, जबकि दोनों अकारान्त शब्द ही हैं। ऐसा क्यों होता है। इस पर सोचिये और कक्षा में चर्चा कीजिये।
2. 'लड़के गए।'
   'लड़के को बुलाओ।'

इन दोनों वाक्यों में 'लड़के' पद/शब्द आया है। क्या इन दोनों में आए 'लड़के' में अर्थ/प्रकार्य का कुछ भेद है? यदि 'हाँ' तो इसके कारण पर विचार करें और कक्षा में चर्चा करें:

3. निम्न विकल्प विद्यार्थियों के सामने रखकर अध्यापक-अध्यापिका विद्यार्थियों से इनमें आये 'ग्लास' व 'चश्मा' के तात्पर्य-भेद पर ध्यान दिलाएँ-
   (क) *पानी का ग्लास - मिट्टी का ग्लास - सीमा का ग्लास*
   (ख) *शीशे का चश्मा - धूप का चश्मा - गाँधी जी का चश्मा*

उन्हें यह स्पष्ट है कि पानी से जो ग्लास का संबंध है, वही मिट्टी के साथ नहीं, फिर

संबंध वही सीता के साथ ग्लास का नहीं है। यही हाल विकल्प (ख) में आये 'चश्मा' का है। इस तात्पर्य-भेद का आधार कौन-सा तत्व है? इस पर उन्हें विचार करने को कहें। उन्हें यह बोध कराना है कि हर में आया 'का' ग्लास या चश्मे को एक ही स्वरूप में नहीं रखता। यानी, अनेकार्थता 'का' में निहित है। हिन्दी का संबंध-प्रत्यय 'का' निश्चित संबंध जो नहीं प्रकट करता, उसी में अनेकार्थता का बीज है। इस बोध के पश्चात्, विद्यार्थियों को 'वाक्य की अनेकार्थता' की अवधारणा से परिचित कराया जाए।

लिंग-संबंधी गतिविधियाँ- विद्यार्थियों को यह कहा जाए कि अपने पिता व माँ के बारे में एक-एक वाक्य बोलें। इस पर सम्भव है कि वे बोलें-

(क) पिताजी मुझे पढ़ाते **हैं**। या, मेरे पिता खेती करते **हैं**। या, पिताजी अभी घर पर **हैं**।
(ख) माँ मुझे खिलाती **है**। या, माँ खाना बनाती **है**। या, माँ घर पर रहती **है**।

अगर वे इस तरह से जवाब दें, तो उनसे निम्न प्रकार की प्रश्न किये जा सकते हैं:

पिता के लिये 'जी' क्यों लगाया, जबकि माँ के लिये नहीं लगाया?
पिता के लिये 'हैं' और माँ क लिये 'है' का प्रयोग क्यों किया?
पिता के लिए दिये गये परिचय और माँ के लिए दिये गये परिचय में अन्तर क्यों?

इन सवालों पर जो विद्यार्थी बोलेंगे, उन की छानबीन करते हुए उनसे-

(क) व्याकरण की वचन नामक कोटि और आदर में बहुवचन की प्रयोग की हिन्दी की व्यवस्था को समझना चाहिए।
(ख) सामाजिक सोच में निहित लिंग-भेद को समझाना चाहिए (मसलन, पिता के लिये आदरार्थक क्रिया और माँ के लिये सामान्य क्रिया का प्रयोग)।

उक्त खींचतान में हो सकता है कि विद्यार्थी इस तरह भी जवाब दें कि पिता को ज़्यादा इज़्ज़त दी जाती है? या माँ से ज़्यादा प्यार होने के चलते 'तू/तुम' प्रयुक्त होता है।

तब, सवाल करना कि माँ को ज्यादा प्यार क्यों, पिता को क्यों नहीं? पिता को ज्यादा इज़्ज़त क्यों, माँ को क्यों नहीं?

इस पर वह जो कुछ बोलेगा/गी, उससे विद्यार्थी की सामाजिक सोच को सामने लाना और उसे समता की दिशा में प्रेरित करना।

इस रास्ते से कराया गया व्याकरण का शिक्षण परम्परागत विधि की तुलना में अधिक रोचक और रचनात्मक हो जाता है। इतना ही नहीं, इससे प्रशिक्षु के मन में जगा या जमा व्याकरण-बोध अधिक टिकाऊ होगा। साथ ही, वह अपने आसपास के माहौल के प्रति सजग भी होगा और उसके प्रति जिम्मेदार भी बनेगा।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन

विवेक नाथ त्रिपाठी*

सारांश

प्रस्तुत शोध में उच्च शिक्षा स्तर के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के बीच राजनैतिक संलिप्तता एवं शिक्षा पर छात्र संघ चुनाव के प्रभाव के प्रति दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

शोध अध्ययन हेतु उच्च शिक्षा में 25 शिक्षकों एवं 25 विद्यार्थियों का न्यादर्श के रूप में चयन किया गया है। आंकड़ों के एकत्रीकरण के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वयं दो अलग-अलग दृष्टिकोण मापनी प्रश्नवाली का निमार्ण किया गया तथा विश्लेषण के लिए टी परीक्षण, प्रतिशत, व काई प्रविधि का प्रयोग किया गया है। शोध परिणाम यह बताते हैं कि राजनैतिक संलिप्तता के प्रति शिक्षकों की अपेक्षा विद्यार्थियो में अधिक सहमति पाई गयी। जबकि संललिप्तता के प्रति शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। छात्रसंघ चुनाव के पक्ष में अधिकांश शिक्षकों ने यह कहा कि अर्थ का ध्यान रखने के लिए चुनाव प्रक्रिया को परिवर्तित कर देना चाहिए तथा विद्यार्थियों को राजनीति में नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर सम्मिलित होना चहिए। छात्रसंघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव के संदर्भ में परिणाम यह बताते हैं कि छात्रसंघ का शैक्षिक वतावरण पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि विद्यार्थी इसके पक्ष में हैं।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में वर्तमान राजनीति का ऐसा स्वरूप उभरा है जिसे सर्वव्यापी राजनीति की संज्ञा दी गयी है। जिससे कोई व्यक्ति अलग नहीं है। कम या अधिक मात्रा में सभी इसमें संल्पित हैं। स्कूल और अन्य शिक्षण संस्थाओं का राजनीतिक सामाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा व्यक्ति को राजनैतिक व्यक्ति बनाने का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। महाविद्यालय/विश्वविद्यालय इस अभिकरण के प्रमुख

*सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-171005
Email: viveknathtripathi@gmail.com

केन्द्र हैं। शिक्षा व्यक्ति को राजनैतिक समझ प्राप्त करने और और राजनैतिक भूमिका निभाने के लिए तैयार ही नहीं करती वरन उसमें राजनीतिक भावना व दायित्वों का विकास भी करती है। इस भावना को विकसित करने का श्रेय उच्च शिक्षण संस्थाओं का होता है। ऐसी दशा में उत्तर प्रदेश में कार्यरत तत्कालीन सरकार द्वारा शैक्षिक सत्र 2007–08 में उच्च शिक्षा स्तर में होने वाली छात्रसंघ चुनाव प्रणाली पर रोक लगा दी गयी जिसके परिणामस्वरूप जगह–जगह छात्र आन्दोलन हड़ताल, धरना प्रदर्शन, सरकारी सम्पत्ति आदि को छात्रों द्वारा नुकसान पहुंचाया गया। उच्च शिक्षा स्तर में छात्रसंघ चुनाव के अभाव में छात्रों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार नहीं मिल पा रहा है। इन प्रदर्शनों के पीछे छात्रों का क्या दृष्टिकोण है। उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षकों का छात्र संघ राजनीति के प्रति दृष्टिकोण क्या है? क्या वे वास्तव में राजनीति में सम्मिलित होना चाहते हैं या नहीं। अत: यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वास्तव में उच्च शिक्षा स्तर में हो रही राजनीति के प्रति शिक्षकों व विद्यार्थियों का दृष्टिकोण क्या है, आदि बातों का उत्तर प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता उक्त समस्या के चुनाव के लिए प्रेरित हुआ। पूर्व में विभिन्न व्यक्तियों ने अपने अनुसंधान में राजनीति संलिप्तता के प्रति शिक्षकों और विद्यार्थियों के दृष्टिकोणों से संबंधित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जिसका विवरण निम्नवत है। ए. राव सुधा, के. पी. (1987); *पोलिटिकल पारटिसिपेशन ऑफ द स्टुडेन्ट ऑफ आन्ध्र यूनिवर्सिटी कैम्पस वीद रिफरेन्स टु कम्युनिकेशन* में पाया कि 66 प्रतिशत विद्यार्थी किसी राजनीतिक संगठन से जुडे हुए हैं और विद्यार्थियों के दूसरे समूह जो राजनीतिक संगठन के सदस्य नहीं हैं उनसे ज्यादा सक्रीय हैं। विद्यार्थियों का वह समूह जो पारिवारिक पृष्ठभूमि में गरीबी तथा गांव से संबंध रखता है वह व्यवसाय के रूप में भी राजनीति में जाने के लिए तैयार नहीं है। राजनीतिक संलिप्तता से संबंधित एक अध्ययन 1992 (भुज सर्वे वैल्यूम 1988) में धर्मवीर ने अपने अध्ययन में पाया कि प्रत्येक दस में एक शिक्षक राजनीतिक दृष्टिकोण से राजनीति से प्रभावित है। किसी भी ज्वलंत राष्ट्रीय महत्व के विषय में व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता होती है। राजनीतिक संलिप्तता के प्रति शिक्षकों और विद्यार्थियों का दृष्टिकोण जानना एक सामयिक आवश्यकता है। भारतीय संविधान में राजनीति के प्रति नागरिकों को अपना–अपना मत व्यक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान के द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों, जो अनुछेद 14 से 32 तक दिये गए हैं जिसमें स्वतंत्रता के अधिकार के अर्न्तगत अनुछेद 19 से 22 तक विचार तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वर्णन किया गया है। जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वर्तमान मे प्रचलित राजनीति व्यवस्था में सहमति–असहमति व्यक्त करने का

अधिकार है। व्यक्तिगत विभिन्नता एक मनौवैज्ञानिक सत्य है। व्यक्ति अपने स्वभाव से एक दूसरे से भिन्न होता है। इसके अनुसार राजनीति के संबंध में भी उनके विचार का भिन्न होना निश्चित है। राजनीति को बुरा-भला कहने तथा उसमें कमियां निकालने की प्रथा पहले से चली आ रही है इस प्रथा का परिणाम भी सामने आया और जनता के हितों के अनूरूप शासन ने समय-समय पर सुधार भी किये हैं। उच्च राजनीति में जहाँ उथल-पुथल में वृद्धि हुई जन आक्रोश आन्दोलन के माध्यम से जनता ने अपना दृष्टिकोण बताने का प्रयास किया। विभिन्न जगहों पर होने वाली सभाओं, गोष्ठियों आदि के माध्यम से जनता अपने विचार सरकार तक पहुँचाती है। इन आन्दोलनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने वालों में अधिकांश भाग छात्र एवं अध्यापकों का ही तो होता है। ये कल के कर्णधार हैं और दूसरे कर्णधार तैयार करने वाले हैं। आने वाले समय में उन्हें ही शासन की बागडोर एवं व्यवस्था की कमान संभालनी है। अत: उनके दृष्टिकोण को जानना अत्यन्त ही महत्वर्पूण है। प्रत्येक व्यक्ति की सोचने समझने की क्षामता अलग-अलग होती है। अब प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण भी मनौवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार भी अलग-अलग हो सकता है। समान्यत: दृष्टिकोण का तात्पर्य किसी वस्तु व्यवस्था घटना या व्यक्ति के बारे मे विशेष प्रकार के विचारों का होना है। शोधकर्ता को इस दृष्टिकोण का भिन्न होना ही प्रेरित करता है कि क्या वास्तव में शिक्षकों एवं विद्यार्थीयों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण में कोई अंतर है? आदि बातों को जानने के लिए शोधकर्ता जो स्वयं एक प्रशिक्षणार्थी है के मन में जिज्ञासा हुई कि चित्रकूट जिले में उच्च शिक्षा स्तर में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण क्या है। क्या वे वास्तव में राजनीति में सम्मिलित होना चाहते हैं।

समस्या कथन : उच्च शिक्षा स्तर में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा स्तर में कार्यरत शिक्षकों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2. चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3. उच्च शिक्षा स्तर में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण की तुलना करना।

4. छात्र संघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन
   (अ) सकाराम्मक प्रभाव
   (ब) नकारात्मक प्रभाव।

शोध की परिकल्पना

चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों के राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध की सीमाएं निम्नलिखित हैं:

1. यह अध्ययन केवल चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा स्तर में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों तक ही सीमित है।
2. इस अध्ययन में केवल स्नातक की शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों को ही लिया गया है।
3. **पदों की संक्रियात्मक परिभाषाएं**
4. **शिक्षक**- प्रस्तुत अनुसंधान में शिक्षक से तात्पर्य उच्च शिक्षा में चित्रकूट जनपद में कार्यरत शिक्षकों से है।
5. **विद्यार्थी**- प्रस्तुत अनुसंधान में विद्यार्थियों से तात्पर्य चित्रकूट जनपद में उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों से है।
6. **राजनैतिक संलिप्तता**- प्रस्तुत अनुसंधान में राजनैतिक संलिप्तता से तात्पर्य शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का राजनीति में सहभागिता से है।
7. **उच्च शिक्षा**- प्रस्तुत अनुसंधान में उच्च शिक्षा से तात्पर्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित स्नातक स्तरीय शिक्षा से है।
8. **दृष्टिकोण**- प्रस्तुत अनुसंधान में दृष्टिकोण से तात्पर्य शोधकर्ता द्वारा दृष्टिकोण मापनी पर प्राप्त किये गए प्राप्तांकों से है।

प्रयुक्त शोध विधि

इस अध्ययन में शोधकर्ता ने सर्वेक्षणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया है।

न्यादर्श

वर्तमान शोध में अनुसंधानकर्ता ने चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षण संस्थाओं में से एक महाविद्यालय एवं एक विश्वविद्यालय का चयन किया।

प्रस्तुत शोध में गोस्वामी तुलसीदास राजकीय महाविद्यालय में स्नातक की शिक्षा ग्रहण कर रहे 15 विद्यार्थियों एवं जगद्गुरू रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय से 10 विद्यार्थियों को लिया गया हैं। गोस्वामी तुलसीदास राजकीय महाविद्यालय के 10 शिक्षकों को लिया गया है। जगद्गुरू रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय से 15 शिक्षकों को लिया गया

शोध हेतु आवश्यक उपकरण

शोधकर्ता द्वारा शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की राजनीतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करने के लिए अलग-अलग दो प्रश्नावली का निर्माण किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधियां

प्रस्तुत अनुसंधान में आंकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रतिशत विश्लेषण, काई वर्ग परीक्षण तथा टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया ।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

चित्रकूट जिले में उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों का राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण

विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करने के लिये प्रतिशत, χ^2 वर्ग परीक्षण टी परीक्षण का प्रयोग किया गया। विश्लेषण से प्राप्त χ^2 वर्ग परीक्षण व प्रतिशत का मान तालिका में दिया गया है।

तालिका-1

विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण की संख्या उसका प्रतिशत एवं χ^2 वर्ग का मान

प्रश्नों की संख्या	सहमत	असहमत	अनिश्चित	योग	χ^2	सार्थकता स्तर
1	17 (68)	8(32)	0(0)	25	17.35	.01=9.210
2	24 (96)	0 (0)	1(4)	25	44.23	.01=9.210
3	17(68)	5(20)	3(12)	25	15.74	.01=9.210
4	17(68)	7(28)	1(4)	25	15.63	.01=9.210
5	6(24)	18(72)	1(4)	25	18.31	.01=9.210

क्रमशः

6	13(52)	11(44)	1(4)	25	9.9	.01=9.210
7	11(44)	11(44)	3(12)	25	5.10	.01=9.210*
8	6(24)	19(76)	0(0)	25	22.83	.01=9.210
9	9(36)	9(36)	7(28)	25	1.42	.01=9.210*
10	6(24)	15(60)	4(16)	25	8.42	.01=9.210*
11	16(64)	7(28)	2(8)	25	12.07	.01=9.210
12	10(40)	11(44)	4(16)	25	3.42	.01=9.210*
13	19(76)	5(20)	1(4)	25	21.43	.01=9.210
14	8(32)	12(48)	5(20)	25	3.06	.01=9.210*
15	8(32)	9(36)	8(32)	25	.076	.01=9.210*

अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष

चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण जानने के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया। प्रश्नावली में सम्मिलित प्रश्नों पर विद्यार्थियों की निम्न प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुईं :

आंकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आए :

- महाविद्यालय में छात्रसंघ चुनाव होने के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (68%) विद्यार्थी अर्थात 17 विद्यार्थियों ने सहमति व्यक्त की तथा (32%) अर्थात 8 विद्यार्थियों ने असहमति व्यक्त की तथा कोई मत न देने वाले विद्यार्थियों की संख्या शून्य रही।
- छात्रसंघ चुनाव के दौरान अपने मत का प्रयोग करने के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (96%) विद्यार्थी अर्थात 24 विद्यार्थियों ने सहमति व्यक्त की तथा (0%) अर्थात 0 विद्यार्थियों ने असहमति व्यक्त की और मात्र (4%) अर्थात केवल 1 विद्यार्थी ने अनिश्चितता व्यक्त की जिससे प्रतीत हो रहा है कि छात्रों में राजनैतिक संलिप्तता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है।
- छात्रसंघ के पदाधिकारी का पद स्वीकार्य करने के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (68%) विद्यार्थी अर्थात 17 विद्यार्थी ने सहमति तथा (20%) विद्यार्थी अर्थात 5 विद्यार्थियों ने असहमति और (12%) विद्यार्थी अर्थात केवल 3 विद्यार्थी ने

इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।

- आप अपने मत का प्रयोग राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य में करेंगे के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (68%) विद्यार्थी अर्थात 17 विद्यार्थी ने सहमति तथा (28%) विद्यार्थी अर्थात 7 विद्यार्थियों ने असहमति और (4%) विद्यार्थी अर्थात केवल 1 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'संसदीय चुनाव के समय आप किसी राजनीतिक दल का चुनाव प्रसार करना पसन्द करेंगे' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (24%) विद्यार्थी अर्थात 6 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (72%) विद्यार्थी अर्थात 18 विद्यार्थियों ने असहमति और (4%) विद्यार्थी अर्थात केवल 1 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- विद्यार्थियों से संबंधित राजनीतिक संगठन का सदस्य बनना पसन्द करेंगे, के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (68%) विद्यार्थी अर्थात 13 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (44%) विद्यार्थी अर्थात 7 विद्यार्थियों ने असहमति और (4%) विद्यार्थी अर्थात केवल 1 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'आप राजनीति में सक्रिय भागदारी निभाना पसन्द करेंगे' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (44%) विद्यार्थी अर्थात 11 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (44%) विद्यार्थी अर्थात 11 विद्यार्थियों ने असहमति और (12%) विद्यार्थी अर्थात केवल 3 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- उपर्युक्त तालिका में प्रश्न संख्या 8 'भविष्य में आप राजनीति को पेशे के रूप में अपनाएंगे' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (24%) विद्यार्थी अर्थात 6 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (76%) विद्यार्थी अर्थात 19 विद्यार्थियों ने असहमति और (0%) विद्यार्थी अर्थात किसी भी विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त नहीं की।
- 'राजनीति एक सर्वव्यापी गतिविधि है इसलिए सभी इसमें शामिल होना चाहते हैं' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (36%) विद्यार्थी अर्थात 9 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (36%) विद्यार्थी अर्थात 9 विद्यार्थियों ने असहमति और (28%) विद्यार्थी अर्थात केवल 7 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।

- 'अगर आप शिक्षा के क्षेत्र में सफल न हुए तो राजनीति को अपना लेंगे' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (24%) विद्यार्थी अर्थात 6 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (60%) विद्यार्थी अर्थात 15 विद्यार्थियों ने असहमति और (16%) विद्यार्थी अर्थात केवल 4 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में कोई मत नही दिया।
- 'आप अपने देश के विकास में योगदान एक राजनेता के रूप में देना चाहते हैं' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (64%) विद्यार्थी अर्थात 16 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (28%) विद्यार्थी अर्थात 7 विद्यार्थियों ने असहमति और (8%) विद्यार्थी अर्थात केवल 2 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'मानवाधिकार में राजनीति की स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण अधिकार है इसलिए आप राजनीति में शामिल होना चाहते हैं' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (40%) विद्यार्थी अर्थात 10 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (44%) विद्यार्थी अर्थात 11 विद्यार्थियों ने असहमति और (16%) विद्यार्थी अर्थात केवल 4 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'समाज के प्रत्येक व्यक्ति को राजनीति में अपनी भागदारी सुनिश्चत करनी चाहिए' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (76%) विद्यार्थी अर्थात 19 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (20%) विद्यार्थी अर्थात 5 विद्यार्थियों ने असहमति और (4%) विद्यार्थी अर्थात केवल 1 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'विद्यार्थी के रूप में आप शासन चुनाव में भाग लेना पसन्द करेगें' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (32%) विद्यार्थी अर्थात 8 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (48%) विद्यार्थी अर्थात 12 विद्यार्थियों ने असहमति और (20%) विद्यार्थी अर्थात केवल 4 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।
- 'लिंगदोह समिति के नियमों का पालन छात्रसंघ चुनाव में होना चाहिए' के संबंध में 25 विद्यार्थियों के कुल प्रतिदर्श में (32%) विद्यार्थी अर्थात 8 विद्यार्थियों ने सहमति तथा (36%) विद्यार्थी अर्थात 9 विद्यार्थियों ने असहमति और (32%) विद्यार्थी अर्थात केवल 8 विद्यार्थी ने इस प्रश्न के संबंध में अनिश्चितता व्यक्त की।

तालिका–2

शिक्षकों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण की संख्या χ^2 वर्ग का मान एवं दृष्टिकोण का प्रतिशत

प्रश्नों की संख्या	सहमत	असहमत	अनिश्चित	योग	χ^2	सार्थकता स्तर
1	7 (28)	18(72)	0(0)	25	19.75	.01=9.210
2	4 (16)	21(84)	0(0)	25	29.83	.01=9.210
3	11(44)	14(56)	0(0)	25	13.02	.01=9.210
4	16(64)	7(28)	2(8)	25	12.07	.01=9.210
5	5(20)	17(68)	3(12)	25	13.75	.01=9.210
6	15(60)	6(24)	4(16)	25	8.22	.01=9.210*
7	23(92)	2(8)	0(0)	25	38.95	.01=9.210
8	16(64)	8(32)	1(4)	25	15.75	.01=9.210
9	10(40)	14(56)	1(4)	25	10.62	.01=9.210
10	24(96)	1(4)	0(0)	25	44.23	.01=9.210
11	22(88)	2(8)	1(4)	25	33.67	.01=9.210
12	10(40)	11(44)	4(16)	25	5.503	.01=9.210*
13	6(24)	17(68)	2(8)	25	14.73	.01=9.210
14	11(44)	11(44)	3(12)	25	5.10	.01=9.210*
15	25(100)	0(0)	3(12)	25	49.23	.01=9.210

प्रयुक्त संकेताक्षर- (*) सार्थक नहीं है।( ) = :

राजनैतिक संलिप्तता के प्रति शिक्षकों की प्रतिक्रियाएं निम्न पाईं गईं:

- 'उच्च शिक्षा स्तर में अध्यापकों का राजनैतिक संगठन होना चाहिए' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (28%) अर्थात 7 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (72%) शिक्षक अर्थात 18 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की। किसी भी शिक्षक ने अनिश्चितता नहीं व्यक्त की।
- 'उच्च शिक्षा स्तर में होने वाले छात्रसंघ चुनाव में' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (16%) अर्थात 4 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (84%) शिक्षक अर्थात 21 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की। किसी भी शिक्षक ने अनिश्चिता नहीं व्यक्त की।

- 'उच्च शिक्षा स्तर में शिक्षकों को विद्यार्थियों को राजनीति में शामिल होने के लिए प्रेरित करना चाहिए' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (44%) अर्थात 11 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (56%) शिक्षक अर्थात 14 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की। किसी भी शिक्षक ने अनिश्चिता नहीं व्यक्त की।
- 'विद्यार्थियों को राजनीति में सम्मिलित होना चाहिये' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (64%) अर्थात 16 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (28%) शिक्षक अर्थात 7 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (8%) अर्थात 2 शिक्षकों ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'उच्च शिक्षा के अधिकांश शिक्षक किसी राजनैतिक संगठन के सदस्य होते हैं' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (20%) अर्थात 5 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (68%) शिक्षक अर्थात 17 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (12%) अर्थात 3 शिक्षकों ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'विश्वविद्यालय शिक्षा एक अच्छा राजनेता तैयार करने का सर्वोत्तम केन्द्र है' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (60%) अर्थात 15 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (24%) शिक्षक अर्थात 6 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (16%) अर्थात 4 शिक्षकों ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'राजनेता हमेशा शिक्षित व्यक्ति होना चाहिए' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (92%) अर्थात 23 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (8%) शिक्षक अर्थात 2 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की। इस संबंध में कोई मत न देने वाले शिक्षकों की संख्या (शून्य) 0 रही।
- 'यदि आपको शिक्षक संघ का सदस्य बना दिया जाए तो आप सहर्ष स्वीकार कर लेंगे' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (64%) अर्थात 16 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (32%) शिक्षक अर्थात 8 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (4%) अर्थात 1 शिक्षक ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'राजनीति को पेशे के रूप अपनाने' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (40%) अर्थात 10 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (56%) शिक्षक अर्थात 14 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (4%) अर्थात 1 शिक्षक ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'विद्यार्थियों को नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर राजनीति में सम्मिलित होना चाहिए' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (96%) अर्थात 24 शिक्षकों ने सहमति

व्यक्त की, तथा (4%) शिक्षक अर्थात 1 शिक्षक ने असहमति व्यक्त की (0%)। इस संबंध में मत न देने वाले शिक्षकों की संख्या 0 (शून्य) रही ।

- 'देश का राजनीतिक समाचार सुनने में अच्छा लगता है' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (88%) अर्थात 22 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (8%) शिक्षक अर्थात 2 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (4%) अर्थात 1 शिक्षक ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'निर्णय लेने की प्रक्रिया में राजनीतिक व्यक्ति के रूप में अपना योगदान देना चाहेंगे के' संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (40%) अर्थात 10 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (44%) शिक्षक अर्थात 11 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (16%) अर्थात 4 शिक्षक ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (24%) अर्थात 6 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (68%) शिक्षक अर्थात 17 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (8%) अर्थात 2 शिक्षक ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।
- 'राजनेता के रूप में देश के राष्ट्रीय विकास में योगदान देना चाहेंगे' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (44%) अर्थात 11 शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा (44%) शिक्षक अर्थात 11 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की (12%) अर्थात 3 शिक्षक ने इस सम्बन्ध में कोई मत नहीं दिया।
- 'राजनीति एक सर्वव्यापी गतिविधि है। इससे शिक्षण संस्थाए भी अछूती नहीं हैं' के संबंध में 25 शिक्षकों में से कुल (100%) अर्थात 25 शिक्षकों ने इस प्रश्न के उत्तर में सहमति व्यक्त की तथा असहमति व मत न देने वाले शिक्षकों की संख्या शून्य भी।

चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षक अध्ययनरत विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण की आपस में तुलना

प्रस्तुत उद्देश्य के लिए शोधकर्ता द्वारा शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया कि

> 'चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा में कार्यरत् शिक्षक एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों की संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'

उपरोक्त परिकल्पना की जाँच के लिए शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण मापनी पर प्राप्त प्राप्तांकों की तुलना की गई। तुलना के लिए टी.-परीक्षण का प्रयोग किया गया (t-test)

तालिका-3

चित्रकूट जिले की उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षक एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों के द्वारा अभिवृत्ति मापनी प्रश्नावली पर प्राप्त अंकों के मध्य तुलना से प्राप्त टी अनुपात

समूह	शिक्षक एवं विद्यार्थियों की संख्या	Df	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	t-ratio
शिक्षक	25	48	3.16	8.2	
विद्यार्थी	25		7.48	3.54	.92

- उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि-टी अनुपात का मान .97 जो .01 स्तर सार्थकता के लिए आवश्यक मात्र (2.68) से कम है।
- अत: परिकल्पना (HO) ''चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा स्तर में कार्यरत शिक्षक एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों की राजनैतिक संलिप्तता के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।'' को स्वीकार किया जाता है।

छात्रसंघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को ज्ञात करने की प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया तथा छात्रसंघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक-नकारात्मक प्रभाव के प्रति शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण की संख्या एवं उनका प्रतिशत ज्ञात किया गया जो तालिका-4 में दिया गया है।

तालिका-4

चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का छात्र संघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव के प्रति विद्यार्थियों के दृष्टिकोण

शिक्षा पर प्रभाव	विद्यार्थी			योग
	सहमत	असहमत	अनिश्चित	
सकारात्मक प्रभाव	17 (68%)	4 (16%)	4 (16%)	25
नकारात्मक प्रभाव	15 (60%)	6 (24%)	4 (16%)	

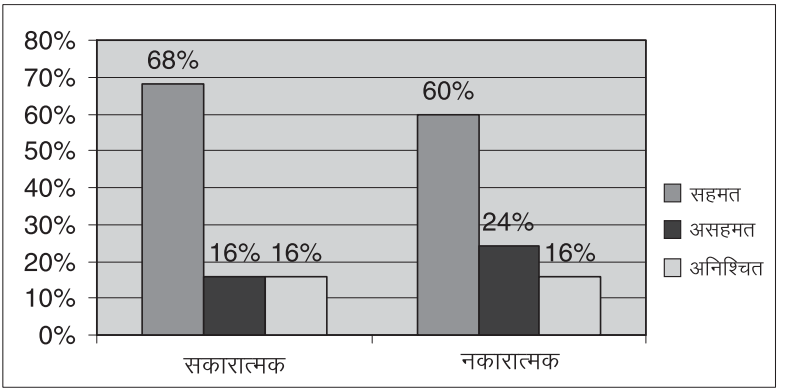

उपरोक्त तालिका एवं दण्ड आरेख के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कुल 25 विद्यार्थियों में से छात्र संघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव के संबंध 68% अर्थात 17 विद्यार्थियों ने सहमति प्रकट की तथा 16% विद्यार्थी अर्थात 4 विद्यार्थियों ने असहमति व्यक्त की शेष 16% विद्यार्थी अर्थात 4 विद्यार्थियों ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।

- जबकि छात्रसंघ चुनाव शिक्षा पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव के प्रति कुल 25 विद्यार्थियों में से 15 विद्यार्थी अर्थात 60 ने अपने मत में सहमत व्यक्त किया तथा 6 विद्यार्थी अर्थात 24 ने असहमति प्रकट की और शेष 16 विद्यार्थी अर्थात 4 विद्यार्थियों ने इस संबंध में कोई मत नहीं दिया।

तालिका-5

चित्रकूट जिले के उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों का छात्र संघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोण की संख्या एवं उसका प्रतिशत

शिक्षा पर प्रभाव	शिक्षक			योग
	सहमत	असहमत	अनिश्चित	
सकारात्मक प्रभाव	13 (52)	9 (36)	3 (12)	
नकारात्मक प्रभाव	16 (64)	8 (32)	1 (4)	

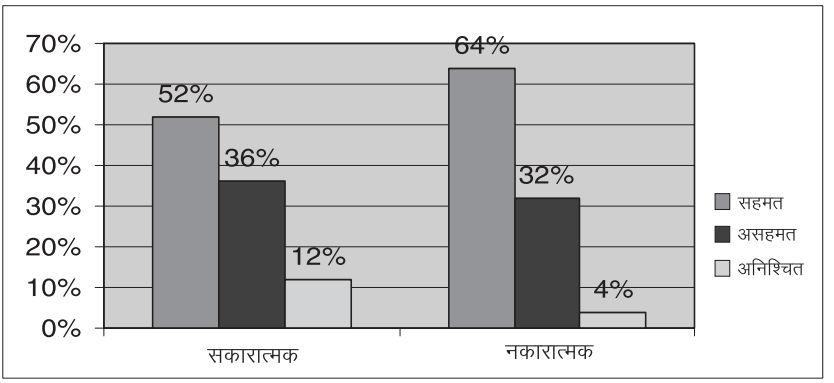

उपरोक्त तालिका एवं दण्ड आरेख के अवलोकन से स्पष्ट है कि कुल 25 शिक्षकों ने छात्र संघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव के संबंध 52 अर्थात 13 शिक्षकों ने सहमति प्रकट की तथा 36 अर्थात 9 शिक्षकों ने असहमति प्रकट की शेष 16 शिक्षक अर्थात 4 शिक्षक ने इस संबंध कोई मत नहीं दिया।

- जबकि छात्रसंघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव के प्रति कुल 25 शिक्षकों में 64 अर्थात 16 शिक्षकों ने सहमति प्रकट की तथा 32 अर्थात केवल 8 शिक्षकों ने असहमति व्यक्त की शेष 4 शिक्षक अर्थात केवल 1 शिक्षक ने इस संबंधा में कोई मत नहीं दिया।

मुख्य निष्कर्ष

- आँकड़ों को इकट्ठा करने तथा विश्लेषण करने के दौरान अनुसंधानकर्ता के समक्ष कई बातें आयीं। विश्लेषण के बाद यह पता चला कि राजनीतिक सहभागिता की सहमति शिक्षकों की अपेक्षा विद्यार्थियों में अधिक पायी गई जबकि असहभागिता के प्रति विद्यार्थी की अपेक्षा शिक्षकों में अधिक सहमति पायी गयी।
- राजनीतिक संलिप्तता के प्रति शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। विश्लेषण के दौरान शोधकर्ता ने अनुभव किया कि वर्तमान में विश्वविद्यालय/महाविद्यालय में छात्रसंघ चुनाव आवश्यक है।
- छात्रसंघ चुनाव के पक्ष में अधिकांश शिक्षकों ने यह कहा कि अर्थ का ध्यान रखने के लिए चुनाव प्रक्रिया को परिवर्तित कर देना चाहिए तथा विद्यार्थियों को राजनीति में नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर सम्मिलित होना चाहिए और राजनेता हमेशा शिक्षित व्यक्ति ही होना चाहिए के संबंध में ज्यादातर शिक्षकों ने सहमति जताई।

- छात्रसंघ चुनाव का शिक्षा पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव के संबंध शिक्षकों की अपेक्षा विद्यार्थियों की संख्या एवं उनका प्रतिशत अधिक था, जबकि नकारात्मक प्रभाव के पक्ष में विद्यार्थियों की अपेक्षा उनके शिक्षकों का प्रभाव अधिक था। छात्रसंघ चुनाव से छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है के पक्ष में ज्यादातर शिक्षकों में सहमति पायी गयी जबकि विद्यार्थियों में इस पक्ष में असमति पायी गई। छात्रसंघ चुनाव से शिक्षण कार्य बाधित होता है के संबंध में ज्यादातर शिक्षकों में सहमति पायी गयी जबकि विद्यार्थियों ने असहमति जताई।
- निष्कर्ष के रूप में आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा में शिक्षकों की अपेक्षा विद्यार्थियों में राजनीतिक सहभागिता अधिक होती है।
- राजनैतिक संलिप्तता के प्रति शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के लिए सुझाव

1. विद्यार्थियों को नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर राजनीति में सम्मिलित होना चाहिए।
2. विद्यार्थियों को गुरु शिष्य की मर्यादाओं को ध्यान में रखकर राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होना चाहिए।
3. विद्यार्थियों को ऐसी राजनीतिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए जिससे विश्वविद्यालय/महाविद्यालय का शैक्षिक वातावरण प्रभावित न हो।
4. छात्रसंघ चुनाव प्रक्रिया को मित्यव्ययिता का ध्यान रखकर परिवर्तित कर देना चाहिए।
5. विद्यार्थियों को ऐसी राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी निभानी चाहिए जो देश के विकास में सहायक हो।
6. विद्यार्थियों को चुनाव प्रक्रिया के दौरान विश्वविद्यालय का वातावरण शांत रखने के लिए शिक्षकों का सहयोग करना चाहिए।
7. विद्यार्थियों को देश के विकास के लिए शिक्षित राजनेता का चुनाव करने के लिए जनता को प्रेरित करना चाहिए।

शिक्षकों के लिए सुझाव

1. शिक्षकों को राजनीति में अपराधिक तत्वों के प्रवेश को रोकने का प्रयास करना चाहिए।
2. लिंगदोह एवं राघवन समिति के नियमों का पालन विश्वविद्यालय राजनीति में होना चाहिए।

3. शिक्षकों को विद्यार्थियों की राजनीतिक गतिविधियों में प्रशासन के द्वारा निर्धारित नियमों को ध्यान में रखकर शामिल होना चाहिए।
4. शिक्षकों को अपने अध्यापन कार्य के दौरान किसी भी राजनीतिक संघठन का सदस्य नही बनना चाहिए।
5. शिक्षकों को विद्यार्थियों को देश के राजनीतिक उथल-पुथल से अवगत कराते रहना चाहिए।
6. शिक्षकों को सरकार का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए जिससे छात्र राजनीति में अपराधिक और हिंसक तत्वों को प्रोत्साहन देना शिक्षा व्यवस्था और राजनीति, दोनों के लिए बुरा है, का पर्दाफास हो सके।
7. विश्वविद्यालय प्रशासन को विश्वविद्यालय परिसर के अपराधीकरण को रोकना चाहिए क्योंकि परिसरों का अपराधीकरण राजनीति के अपराधीकरण से जुड़ा है।
8. राजनेताओं का विश्वविद्यालय राजनीति में हस्तक्षेप व उनके संरक्षण को रोकना चाहिए।

संदर्भ

राव सुधा, के.पी. (1987); *पोलटिकल पारटिसिपेशन ऑफ द स्टुडेन्ट ऑफ आन्ध्रा यूनिवर्सिटी कैम्पस वीद रिफरेन्स टु कम्युनिकेशन ऑफ एनसीईआरटी* बुच, एम.बी. 'फिफ्थ सर्वे आफ रिचर्स इन एजुकेशन' 1985।

यादव सी.पी. (1988); *ए स्टडी ऑफ द ऐटीट्यूड ऑफ टिचर्स टुवर्ड द पोलटिकस कॉलेज ऑफ उत्तर प्रदेश।* बुच एम.बी. फिफ्थ सर्वे ऑफ रिचर्स इन एजुकेशन।

कोली (1989); *स्टडी ऑफ ऐटीट्यूड आफॅ स्टूडेन्टस टुवअर्ड रिलिजन इन रिलेशन टू पर्सनाल्टी करेक्टर इन्टीलिजेन्स एण्ड सोशिओ इकोनॉमिक्स स्टेट्स।*

मोहन एण्ड पवनसाम (1990); *ऐटीट्यूड डिफरेन्स अमंग कॉलेज स्टूडेन्टस टू अवर्ड पोलटिकल डेमोक्रेसी*-सर्व ऑफ रिसर्च इन ऐजुकेशन। 1988

दास ए.के. (1990); *द स्टटी ऑफ सोशल स्र्टकचर ऑफ द न्यू पोलटिकल इलेक्ट हू आर अमेरिकन विद द डिसअपेरियन्स ऑफ द ओल्ड इलेक्ट एण्ड विच द डिसअपिर्यस ऑफ द ओल्ड साइट विच रिफलेक्ट ऐज वेल ऐज द अफेक्ट ऑफ द डवेल्पमेट।*

कुमारी एस. (1991); *ए कमपरेटिव स्टडी ऑफ ऐटीटयूड टुअवर्ड पापुलेशन ऐजुकेशन।* बुच, एम.बी. ''फिफ्थ सर्वे आफ रिचर्स इन एजुकेशन।

मारेट स्टिमन्न, बी.आर. अन्सन (1994) *व्हाट ड्ज रिर्सचेज ऑन पोलटिकल ऐटीट्यूड एण्ड बिहेवियर टेल अस अबाउट द नीड् फॉर इम्प्रूविंग ऐजुकेशन फॉर डेमोक्रेसी।*

फाई डेल्टा कप्पा (1994); *सर्वे ऑफ द पब्लिक ऐटीट्यूड टुअवर्ड द पब्लिक स्कूल इन अमेरिका।*

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

जे.डी. सिंह* एवं **रोशन लाल वर्मा****

सारांश

पिछले कुछ वर्षों में उद्योग, बैंकिंग, व्यापार व शासन की प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग आधारभूत परिवर्तन लेकर आया है। आज के इस आधुनिक तकनीकी युग में सूचना एवं संचार तकनीक शिक्षा के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। इसके सम्मिश्रण ने हमें शिक्षा के अनेक आश्चर्यजनक श्रव्य-दृश्य माध्यम जैसे रेडियो, टेलीविजन, टेली-कांफ्रेसिंग, विडियो-कांफ्रेसिंग, कम्प्यूटर-कांफ्रेसिंग, सी.डी. रोम, टेलीफोन, डी.वी.डी., सैटेलाईट, इंटरनेट आदि उपलब्ध करवाए हैं, जिन्होने ज्ञान के संकलन, संचरण व विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी सहायता से सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में अधिक गतिशील व रुचिकर तरीके से शिक्षा उपलब्ध करवाने में सहायता मिली है। वास्तव में आज के युग में अनेक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय उभरकर सामने आये हैं। व्यावसायिक विकास का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का समग्र विकास करना होता है। भारत में शिक्षण व्यवसाय भी विभिन्न व्यवसायों की श्रृंखला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में विकसित हुआ है। अत: वर्तमान समय में एक शिक्षक से यह आशा की जाती है कि वह कक्षा-कक्ष में शिक्षण के दौरान सूचना एवं संचार तकनीक के आधुनिक उपकरणों के प्रभावी प्रयोग का प्रशिक्षण प्राप्त करे और अपने व्यावसायिक कौशल व दक्षता में वृद्धि करे।

प्रमुख शब्द- वृत्तिक विकास, व्यावसायिक कौशल, सूचना एवं संचार तकनीकी, शिक्षक

*वरिष्ठ प्रवक्ता, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, शिक्षा महाविद्यालय (सीटीई), संगरिया-335063, राजस्थान
**प्राचार्य, जम्भेश्वर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, रावतसर,, हनुमानगढ़, राजस्थान

प्रस्तावना

शिक्षा की प्रक्रिया में सुधार लाने हेतु तथा शिक्षकों के स्वज्ञान में वृद्धि कर अपना वृत्तिक (Professional) विकास करने में सूचना एवं संचार तकनीक का विशेष उपयोग अति आवश्यक है। आज के उच्च तकनीकी सम्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक समाज में गुणवान छात्रों तथा कुशल एवं योग्य शिक्षकों का निर्माण केवल सूचना एवं संचार तकनीक के उचित ज्ञान द्वारा ही संभव है। छात्रों तथा शिक्षकों में इन गुणों व योग्यताओं का विकास किया जाना संभव तभी हो सकता है, जब शिक्षक स्वयं सूचना एवं संचार तकनीक के अत्याधुनिक साधनों के उपयोग का ज्ञान रखते हों। 'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्' द्वारा शिक्षकों की गुणवत्ता में वृद्धि लाने हेतु शिक्षकों के शैक्षिक एवं वृत्तिक विकास का लक्ष्य रखा गया है। सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों के लिये दो तरह से उपयोगी हो सकता है, प्रथम- सूचनाओं का उच्च स्तरीय प्रस्तुतीकरण शिक्षार्थी के विषय के प्रति ज्ञान एवं समझ को विकसित करता है, दूसरा- सूचनाओं व ज्ञान का विस्तृत प्रसारण एवं प्राप्ति छात्र व अध्यापक के मध्य संबंधों को अधिक उपयोगी व प्रभावशाली बनाता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, तकनीकी उपकरणों व स्रोतों का वह समूह अथवा संगठन है जो सूचना एवं आंकड़ों के सृजन, संकलन, प्रोसेसिंग, भंडारण, प्रस्तुतीकरण और प्रसारण को सम्पन्न करवाते हैं। सूचना एवं संचार तकनीक के परम्परागत उपकरण जैसे टी.वी., रेडियो व टेलीफोन ने तो विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपयोगिता तथा प्रभावशीलता को पहले ही स्थापित कर दिया है। शिक्षकों के व्यावसायिक विकास एवं प्रशिक्षण हेतु आयोजित विचारगोष्ठियों, कार्यशालाओं व वार्षिक सम्मेलनों में टेलीकांफ्रेसिंग, टेलीकम्यूनिकेशन, इन्टरनेट तथा रेडियो में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की सहायता से शिक्षकों को उनके शिक्षण स्तर में सुधार लाने और उनके वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करने हेतु प्रयास किये जाते हैं। अब प्रश्न यह है कि कितने शिक्षक कक्षा-कक्ष में तकनीकी का उपयोग करते हैं? कितने शिक्षक तकनीकी के उपयोग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं? कितने शिक्षक सूचना एवं संचार तकनीक का सही उपयोग करने का कौशल रखते हैं? तथा कितने शिक्षक उच्च शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग करने के प्रति जागरूक है? अत: वर्तमान में शिक्षण कार्य में लगे हुये अध्यापकों को अपने वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करने, पूर्व ज्ञान को सुदृढ़ करने तथा अपने शिक्षण अनुभवों में वृद्धि कर अपना वृत्तिक विकास करना आवश्यक है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

वर्तमान युग तकनीकी का युग है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीक एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गयी है। राष्ट्र के समक्ष 2020 तक विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आने का लक्ष्य रखा गया है और राष्ट्र को इस लक्ष्य तक पहुँचाने का दायित्व विद्यालयों की अपेक्षा महाविद्यालयों पर अधिक है, क्योंकि महाविद्यालयों में से निकला नौजवान तुरंत राष्ट्र के विकास में योगदान देने में सक्षम हो सकता है। उच्च वैज्ञानिक व तकनीकी विशिष्टता से सम्पन्न युवा पीढ़ी किसी राष्ट्र की उन्नति एवं विकास हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति है। इस शक्ति को और अधिक मजबूत और प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक है महाविद्यालयी शिक्षा को और अधिक व्यापक व प्रभावशाली बनाया जाए। इसके लिए वर्तमान में महाविद्यालयी शिक्षकों के लिए तकनीक का ज्ञान आवश्यक है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जहां पर पाठ्यक्रम और शिक्षण कार्य अधिक व्यापक हो जाता है सूचना एवं संचार तकनीक एक शिक्षक को उसके विषय से संबंधित तथा अन्य क्षेत्रों से संबंधित अधिक से अधिक जानकारी प्रदान कर उसके व्यावसायिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

हम इक्कीसवीं सदी के अत्याधुनिक समाज से संबंध रखते हैं। आज के बच्चे कल का भविष्य है। अत: बच्चों में केवल ज्ञान प्राप्ति और उसे पुन: स्मरण करने संबंधी कौशल का विकास करने की अपेक्षा जरूरत है, तार्किक चिन्तन की क्षमता, सही निर्णय करने की योग्यता, सम्प्रेषण कुशलता व समस्या समाधान की योग्यता का विकास करने की। अत: केवल 'चॉक, टॉक और टीच' जैसी नीरस विधि का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान उपयोग कोई मूल्य नहीं रखता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षण–अधिगम की सार्थकता को सिद्ध करने के लिये सूचना एवं संचार तकनीक के आधुनिक उपकरणों के साथ विषय सामग्री के सम्मिश्रण की आवश्यकता है। परन्तु क्या हमारे शिक्षक इस सूचना एवं संचार तकनीक के नवीनतम उपकरणों का ज्ञान व इनके पूर्णतम उपयोग की क्षमता रखते हैं? क्या आज के शिक्षक शिक्षण की परम्परागत विधियों के साथ आधुनिक तकनीक का सम्मिश्रण कर शिक्षण–अधिगम के वांछित परिणामों को प्राप्त करने की कुशलता रखते हैं? क्या शिक्षक अपने शिक्षण व्यवसाय के विकास हेतु प्रयासरत हैं? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो वर्तमान शोध समस्या के अध्ययन पर बल देते हैं। आज के वैश्वीकरण के युग में शिक्षा के वृहत् उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ज्ञान के विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करने हेतु शिक्षकों में सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्ति, जागरूकता व कौशल का होना अत्यावश्यक है और ये विशेषता न केवल उसके ज्ञान स्तर का विकास करेगी, बल्कि उसके व्यावसायिक विकास का मार्ग प्रशस्त

कर उसके सामाजिक व आर्थिक स्तर में उच्चता लायी जा सकेगी। इसलिए प्रस्तुत शोध अध्ययन में 'महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका' विषय का चयन किया गया।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के लिए निम्नांकित उद्देश्यों को लिया :

1. व्यावसायिक व गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयी शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों का अध्ययन करना।
2. व्यावसायिक व गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयी शिक्षकों में सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों का अध्ययन करना।
3. व्यावसायिक और गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयी शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका का अध्ययन करना।
4. व्यावसायिक और गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयी शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में अंतर का अध्ययन करना।
5. व्यावसायिक और गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयी शिक्षकों के सामाजिक–आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका का अध्ययन करना।
6. अनुसंधान हेतु प्रस्तावित क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीक के समुचित उपयोग हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
7. प्रस्तुत शोध कार्य में भावी शोध हेतु संभावनाएं प्रस्तुत करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ

उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये शोधकर्ता ने अग्रलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया है :

1. व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है:
   - H_1 ग्रामीण क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।
   - H_2 शहरी क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।
   - H_3 व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक

विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

2. गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है:

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_3 गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों की व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

3. व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है:

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_3 व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

4. गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है :

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_3 गैर–व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्तियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

5. व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है :

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_3 व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

6. गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है :

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_3 गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

7. व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में निम्नलिखित चरों के संबंध में सार्थक अन्तर नहीं है :

   H_1 ग्रामीण क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

   H_2 शहरी क्षेत्र के व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_3 व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

8. गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में निम्नलिखित चरों के सम्बन्ध में सार्थक अन्तर नहीं है :

H_1 ग्रामीण क्षेत्र के गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_2 शहरी क्षेत्र के गैर-शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार व्यावसायिक महाविद्यालयों के महिला एवं पुरुष शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

H_3 गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के समस्त महिला एवं पुरुष तकनीक की भूमिका में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन का न्यादर्श

इस अध्ययन में बीकानेर संभाग के चार जिलों– श्रीगंगानगर, हनुमानगढ, चूरु, बीकानेर के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के व्यावसायिक व गैर व्यावसायिक महाविद्यालयों में कार्यरत् लगभग 2500 महिला एवं पुरुष शिक्षकों में से 400 पुरुष व महिला शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है जिनका चयन महाविद्यालय के प्रकार, स्तर व क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए यादृच्छिक आधार पर किया गया है।

न्यादर्श तालिका

क्र.सं.	महाविद्यालय	लिंग	क्षेत्र		कुल संख्या
			ग्रामीण	शहरी	
1.	वृत्तिक	महिला	50	50	100
		पुरुष	50	50	100
2.	गैर-वृत्तिक	महिला	50	50	100
		पुरुष	50	50	100
3.	कुल		200	200	400

शोध अध्ययन की परिसीमाएँ

प्रस्तुत शोध अध्ययन राजस्थान राज्य के बीकानेर संभाग के श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, चूरु व बीकानेर जिलों में स्थित ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विभिन्न व्यावसायिक और गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों तक सीमित रखा गया है।

शोध विधि-प्रविधि एवं उपकरण

महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका को जानने के लिए सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया जिसमें अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले महाविद्यालयी शिक्षकों के विचारों को स्वनिर्मित उपकरण की सहायता से इकट्ठा किया गया। शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका संबंधी अभिवृत्ति मापनी में निम्न विषयों को लिया गया :

1. व्यावसायिक विकास के प्रति अभिवृत्ति मापनी।
2. सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्ति मापनी।
3. सामाजिक-आर्थिक उन्नयन के प्रति अभिवृत्ति मापनी।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियां

प्रस्तुत शोध कार्य में दत विश्लेषण करने के लिए विवरणात्मक विश्लेषण हेतु प्रतिशतता, सहसंबंध, मध्यमान व मानक विचलन का प्रयोग तथा विभेदात्मक विश्लेषण में विभिन्न चरों के आधार पर महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका से संबंधित अभिवृत्ति में अंतर व सार्थकता जांचने हेतु टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन से निम्नलिखित मुख्य निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं :

(1) महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास के प्रति अभिवृत्ति संबंधी अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

1. महाविद्यालयी शिक्षकों की व्यावसायिक गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु सूचना एवं संचार तकनीक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
2. एक व्यक्ति जो सूचना एवं संचार तकनीक की पूर्ण जानकारी रखता है, अधिक आसानी से नियुक्ति पा सकता है, बजाय उस व्यक्ति के जो सूचना एवं संचार तकनीक का अधूरा ज्ञान रखता है।

3. सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग से शिक्षकों के व्यावसायिक दक्षता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।
4. वे अध्यापक जो सूचना एवं संचार तकनीक का समुचित ज्ञान नहीं रखते हैं, इस बात से सहमत हैं कि अपने अधूरे ज्ञान के कारण उन्हे शिक्षण कार्य में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
5. अधिक आयुवर्ग के अध्यापकों की अपेक्षा निम्न आयुवर्ग के अध्यापक अपने ज्ञान व व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि हेतु सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अधिक प्रयासरत रहते हैं।
6. 15 प्रतिशत शिक्षकों ने यह स्वीकार किया कि अपनी प्रथम नियुक्ति के समय वे सूचना एवं संचार तकनीक का समुचित ज्ञान नहीं रखते थे।
7. शहरी महिला शिक्षकों की तुलना में ग्रामीण महिला शिक्षकों की वृत्तिक विकास के प्रति अभिवृति अधिक सकारात्मक पाई गई।
8. 34 प्रतिशत महिला शिक्षकों ने यह स्वीकार किया कि पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के कारण वे वृत्तिक विकास के प्रति अधिक सचेत नहीं रह पाती हैं।
9. लगभग 10 प्रतिशत शिक्षकों का यह मानना था कि वृत्तिक विकास की अवधारणा ही नकारात्मक है।
10. अधिकांश महिला शिक्षकों का यह मानना था कि उपयुक्त प्रशिक्षण अवसर व उपयुक्त सुविधाओं के अभाव में वे वृत्तिक विकास की ओर अग्रसर नहीं हो पाती हैं।
11. महिला शिक्षकों की तुलना में पुरुष शिक्षकों की वृत्तिक विकास के प्रति अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक पाई गई। इसका कारण महिला शिक्षकों की सामाजिक व पारिवारिक उतरदायित्वों के प्रति ज्यादा सजगता है।

(2) महाविद्यालयी शिक्षकों की सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अभिवृत्ति संबंधी अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

1. शिक्षक अपने ज्ञान को अद्यतन बनाये रखने के लिये सूचना एवं संचार तकनीक का नियमित रूप से उपयोग करते हैं तथा छात्रों को भी इस हेतु प्रोत्साहित करते हैं।
2. 36 प्रतिशत पुरुष शिक्षकों ने इस बात से सहमति जताई कि वे अधिकांशत:

सूचना एवं संचार तकनीकी के उपकरणों का अभाव होने के बावजूद कक्षा-कक्ष में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग करने का प्रयास करते हैं।

3. 20 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि सूचना एवं संचार तकनीक का कक्षा-कक्ष में नियमित रूप से उपयोग पाठ्यक्रम को समय पर पूरा करने में बाधक है।
4. 35 प्रतिशत शिक्षकों ने स्वीकार किया कि उनके महाविद्यालय में समय पर आवश्यकतानुसार सूचना एवं संचार तकनीक की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाती है।
5. केवल व्याख्यान विधि के बजाय सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग शिक्षण अधिगम को अधिक प्रभावी, सरल व सरस बना देता है।
6. गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक कक्षा-कक्ष में अध्यापन के दौरान सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग करने की बजाय व्याख्यान विधि का ही अधिक उपयोग करते हैं।
7. ग्रामीण क्षेत्र के महाविद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की बजाय पुरुष शिक्षकों ने अपनी व्यावसायिक दक्षता में वृद्धि हेतु सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति व रुचि दिखाई।
8. व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षक, गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों के शिक्षकों की अपेक्षा सूचना एवं संचार तकनीकी के उपयोग के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण, व अभिवृत्ति व रुचि रखते हैं।
9. महिला शिक्षक पुरुष शिक्षकों की तुलना में सूचना एवं संचार तकनीकी के उपकरणों का कम उपयोग करती हैं। इसका कारण यह है कि महाविद्यालयों में इन उपकरणों का प्राय: अभाव पाया गया। यदि किसी महाविद्यालय में यदि ये उपलब्ध भी हैं, तो इनके दैनिक उपयोग की अनुमति नहीं होना पाया गया।

(3) महाविद्यालयी शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक उन्नयन में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका संबंधी अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

1. सूचना एवं संचार तकनीक की पूर्ण जानकारी एवं उसका नियमित उपयोग एक शिक्षक की अपने साथी अध्यापकों व छात्रों में प्रतिष्ठा व सम्मान में

बढ़ोत्तरी करती है।

2. सूचना एवं संचार तकनीक का ज्ञान एक शिक्षक के अच्छे संस्थानों में नियुक्ति के अवसरों को बढ़ाता है तथा उनकी वेतन वृद्धि में सहायक है।
3. 25 प्रतिशत शिक्षकों ने इस बात से सहमति जताई कि सूचना एवं संचार तकनीक की पूर्ण जानकारी रखने से उन्हें अपने महाविद्यालय व समाज में एक अलग पहचान मिली है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के गैर-व्यावसायिक महाविद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की बजाय पुरुष शिक्षक सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग के अधिक अवसरों की उपलब्धता के कारण सामाजिक व आर्थिक रूप से अधिक लाभान्वित हुए हैं।
5. अधिकांश शिक्षकों का मानना था कि उपयुक्त प्रशिक्षण के अभाव में वे इसका समुचित लाभ नहीं ले पाते हैं।
6. महिला शिक्षक व्यक्तिगत और पारिवारिक मजबूरियों के कारण भी सूचना एवं संचार तकनीकी से उपयुक्त लाभ नहीं ले पा रही हैं।
7. अधिकांश महिला शिक्षकों का यह मानना था कि वे इस दिशा में बढ़ना तो चाहती हैं, किन्तु पारिवारिक मजबूरियों के चलते उन्हें मजबूरी में पीछे हटना पड़ता है, क्योंकि वे पति एवं बच्चों को छोड़कर अन्यत्र जा सकने में असमर्थ रहती है।
8. करीब 12 प्रतिशत शिक्षकों ने यह स्वीकार किया कि सूचना एवं संचार तकनीकी से सामाजिक-आर्थिक उन्नयन किस प्रकार किया जा सकता है, वे इस बात से अनभिज्ञ हैं।

(4) महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका संबंधी अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

1. महाविद्यालयी शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी महत्वपूर्ण सूचना निभाती है।
2. एक शिक्षक सूचना एवं संचार तकनीकी की सहायता से अधिक आसानी से अपने वृत्तिक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है।
3. महाविद्यालयी महिला एवं पुरुष शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं

संचार तकनीकी की भूमिका में सार्थक अंतर पाया गया।

4. 28 प्रतिशत महिला शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका वास्तव में अनुकूल पाई गई।
5. 48 प्रतिशत पुरुष शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका वास्तव में अनुकूल पाई गई।
6. पुरुष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की सहभागिता कम पाई गई है।
7. अधिकांश शिक्षकों का यह मानना था कि सूचना एवं संचार तकनीकी की सहभागिता से वृत्तिक विकास आसानी से किया जा सकता है।
8. अधिकांश संस्थानों में सूचना एवं संचार तकनीकी से संबंधित आवश्यक उपकरणों एवं सुविधाओं का अभाव या उपलब्धता होने पर भी नियमित उपयोग की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण भी वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की सहभागिता कम पाई गई।

शोध क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीक के समुचित उपयोग हेतु सुझाव

1. महाविद्यालयों में सूचना एवं संचार तकनीक से संबंधित आवश्यक एवं पर्याप्त साधन व सुविधाएं जुटाई जाए।
2. वर्तमान समय में महाविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के समय सूचना एवं संचार तकनीक से संबंधित उनके समुचित ज्ञान को एक अनिवार्य योग्यता बनाया जाए।
3. कक्षा–कक्ष में अध्यापन के दौरान उपयोग में आने वाले सूचना एवं संचार तकनीक के आवश्यक उपकरणों की स्थाई व्यवस्था करवायी जाए।
4. जहां पर ये उपकरण उपलब्ध हैं, उनका समुचित उपयोग सुनिश्चित किया जाये, ताकि न केवल शिक्षक बल्कि छात्र भी उनसे लाभान्वित हो सकें ।
5. वर्तमान समय में महाविद्यालयों में कार्यरत वे शिक्षक जिन्हें सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग का समुचित ज्ञान नहीं हैं, उन्हें महाविद्यालयों में इस हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की जाए।
6. राज्य सरकार द्वारा शिक्षकों में सूचना एवं संचार तकनीक के उपयोग की अभिवृत्ति को बढ़ावा देने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करवाया जाना चाहिए।

7. शिक्षकों द्वारा कक्षा-कक्ष में अध्यापन के दौरान सूचना एवं संचार तकनीक का उपयोग कर छात्रों को भी इस तकनीक के उपयोग हेतु प्रोत्साहित किया जाए तथा आवश्यक प्रशिक्षण भी दिया जाए।
8. महाविद्यालयों में सेमिनारों व विचारगोष्ठियों का आयोजन कर शिक्षकों व छात्रों को सूचना एवं संचार तकनीक से संबंधित खोजों एवं अविष्कारों के बारे में नवीनतम जानकारी उपलब्ध करवायी जाए।
9. महाविद्यालयों में सूचना एवं संचार तकनीकी के समुचित उपयोग करने वाले शिक्षकों को वेतन वृद्धि व पदोन्नति दी जाए, ताकि अन्य शिक्षक भी प्रोत्साहित हो सकें।

शोध अध्ययन के प्रभाव

शोध अध्ययन का प्रभाव छात्रों, समाज, शिक्षक व राष्ट्र पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हो सकेगा। इस अध्ययन के बाद वृत्तिक विकास के क्षेत्र में भी सूचना एवं संचार तकनीकी का अधिक उपयोग सम्भव हो सकेगा। ग्रामीण, शहरी तथा महिला एवं पुरुषों और वृत्तिक एवं गैर-वृत्तिक महाविद्यालयों के आधार पर वृत्तिक विकास संबंधी अभिवृत्तियों के सार्थक अंतर पाये जाने पर इस विभेद को दूर करने हेतु यह शोध अध्ययन महाविद्यालयों, शिक्षा विभाग, सरकार व अन्य संबंधित लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकेगा। वृत्तिक विकास के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति शिक्षक व राष्ट्र दोनों के शुभ एवं सम्यक् तथा उपयोगी हो सकेगी। सम्भवत: राष्ट्र के विकास में वही प्रभाव पड़ सकेगा, जो पुस्तकों एवं शिक्षा का पड़ता है। यदि शिक्षक वृत्तिक विकास के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखेगा तो स्वयं के विकास से प्रेरित होकर अपने कर्त्तव्यों को प्रभावी ढ़ंग से पूर्ण कर पाने में समर्थ हो सकेगा। अध्यनन से प्राप्त निष्कर्ष वृत्तिक विकास की योजना के आधारभूत, तथ्यपरक एवं सूचनात्मक स्रोत बनेंगे। निष्कर्ष में यदि वृत्तिक विकास के प्रति अभिवृत्ति नकारात्मक है तो इस दिशा में विभिन्न उपचारात्मक योजनाओं को बल मिलेगा और इसके साथ ही सूचना एवं संचार तकनीकी का शिक्षा एवं वृत्तिक विकास के क्षेत्र में गुणात्मक स्वरूप प्रबल हो सकेगा।

अत: शिक्षकों के वृत्तिक विकास में सूचना एवं संचार तकनीकी की भूमिका के बारे में अध्ययन करना एवं उसके स्वरूप का पता लगाना एक आवश्यकता आधारित राष्ट्र विकास कार्यक्रम है। चिन्तन मानस की उपर्युक्त दिशाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत अध्ययन एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, जिसके परिणामों से निर्देशित होकर न केवल राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में सुधार की संभावनाएं बनेगी, बल्कि महाविद्यालयों में नवीन

प्रौद्योगिकी में दक्ष अच्छे शिक्षक तैयार हो सकेंगे।

संदर्भ

एम.एच.आर.डी. (1989), *नेशनल पॉलिसी आन एजुकेशन*–1986, पीऑए–1990, न्यू देहली, गवरनमेंट ऑफ इन्डिया प्रेस।

एफ, एन. करलिंगर (1983), *फाउन्डेशन्स ऑफ बीहेवरल रिसर्च*, न्यू देहली: सुरजीत पब्लिकेशन्स।

ओबरॉय, एस. सी. (2008), *शैक्षिक तकनीकी*, नई दिल्ली: आर्य बुक डिपो।

चौरसिया, जी. (1967), *न्यू एरा इन टीचर एजुकेशन*, न्यू देहली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि.।

यूनेस्को (1998), *टीचर एन्ड टीचिंग इन अ चेजिंग वर्ल्ड*, वर्ल्ड एजुकेशन रिपॉर्ट, पेरिस।

बंसल, एस. के. (2002), *फन्डामेंटल्स ऑफ इनफोर्मेसन टेक्नोलॉजी*, न्यू देहली: एपीएच पब्लिशिंग कार्पोरेशन।

बुच, एम.बी. (एड.) (1986), *थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*, वॉल्युम 1 एन्ड 2, न्यू देहली: एनसीइआरटी।

बेस्ट, जे. डब्ल्यु (1998), *रिसर्च इन एजुकेशन*, न्यू देहली: प्रेन्टिस हाल ऑफ इन्डिया प्रा. लिमिटेड।

कार्विन. एन्डी (1995), *मोर देन जस्ट हाइप: द वर्ल्ड वाइड वेब एज ए टूल फॉर एजुकेशन.* द हॉरीजन होम पेज (ऑन–लाइन)।

कौल, लोकेश (2008), *शैक्षिक अनुसंधान की विधियां*, न्यू देहली: विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि.।

सिंह, मया शंकर (2007), *शैक्षिक प्रबंधन एवं शिक्षण तकनीकी*, आगरा: अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

सिंह, जे.डी. व अन्य, (2001), *विद्यालय प्रबंध व शिक्षा की समस्याएं*, जयपुर, रिसर्च पब्लिकेशन्स।

राजपूत, जे. एस. (1990), *युनिवर्सलाइजेशन ऑफ एलीमेंटरी एजुकेशन: रोल ऑफ टीचर एजुकेशन*, न्यू देहली: विकास पब्लिशिंग हाउस।

शर्मा, प्रभा व नाटाणी, प्रकाश नारायण (2006), *शैक्षिक तकनीकी और कक्षा–कक्ष प्रबंधन*, जयपुर: माया प्रकाशन मंदिर।

सचिन, इ. एच. (1972), *प्रोफेशनल एजुकेशन, सम न्यू डायरेक्शन्स*, न्यूयार्क : मेक. ग्रा हिल्स प्रा. लि.।

सचदेवा, एम. एस., शर्मा, के. के. और उपाध्याय, एस. के. (2007) *शैक्षिक तकनीकी*, लुधियाना: एजूकेशनल पब्लिशर्स।

सेन्डहाल्ज जे., रिंगस्टॉफ सी. एन्ड डायर डी. (1997), *टीचिंग विद टेक्नोलॉजी*, न्यूयार्क : टीचर्स कॉलेज प्रेस।

टेप्सकोफ, डी. (1998), *ग्रोइंग अप डिजिटल: द राइज ऑफ नेट जनरेशन*, न्यूयार्क : मेक. ग्राहिल्स प्रा. लिमिटेड।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति एवं युवा पीढ़ी की उसके प्रति जागरूकता पर शिक्षा का प्रभाव

शिवानी दीवान*, सिद्धार्थ जैन** एवं **सम्बित कु. पाढ़ी*****

सारांश

यह अध्ययन कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति एवं युवा पीढ़ी की उसके प्रति जागरूकता से संबंधित है। इस अध्ययन द्वारा कन्या भ्रूण हत्या की भयावहता को सामने लाने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णननात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। कुल 120 न्यादर्श लिए गए हैं। अध्ययन में न्यादर्श चयन हेतु स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में स्वनिर्मित उपकरण के रूप में 'कन्या भ्रूण हत्या जागरूकता मापनी' का प्रयोग किया गया है। परिणाम के रूप में पाया गया कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा कन्या भ्रूण हत्या की दर को कम किया जा सकता है।

प्रस्तावना

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज द्वारा नियंत्रित की जाती है। शिक्षा व्यक्ति के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा समाज से और समाज व्यक्ति से प्रत्यक्षत: जुड़ा हुआ है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है और उसी में अपना जीवनयापन करता है। वह समाज के रीति-रिवाजों, धर्म, भाषा, शिक्षा के स्वरूप, प्रचलित कुरीतियों सभी से प्रभावित होता है तथा इन्हें प्रभावित भी करता है। आज समाज में कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, बाल विवाह जैसी अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हैं जो मानवीय विकास में बाधक हैं। इन कुरीतियों को जड़ से मिटाने से ही समाज प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर,छत्तीसगढ़
** रीडर एवं प्रभारी प्राचार्य, डी.पी. विप्र शिक्षा महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
*** सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

है। इन सामाजिक बुराइयों को व्यक्ति की सकारात्मक चेतना ही समाज से हटा सकती है और इस सामाजिक चेतना के विकास हेतु शिक्षा एक सशक्त माध्यम है। कन्या भ्रूण हत्या से आशय है– महिला के गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग–परीक्षण के उपरांत यदि गर्भ में पल रही शिशु कन्या है तो जन्म लेने से पहले ही गर्भ को समाप्त कर देना।

आज एक महत्वपूर्ण समस्या उन मासूम बच्चियों की है जिन्हें इस दुनिया में जन्म लेने से पूर्व ही निर्दयतापूर्वक समाप्त कर दिया जाता है। इस प्रकार कन्या भ्रूण हत्या महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन है। स्वतंत्रता के बाद जहां सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है वहीं उनके अनुपात में कमी आयी है। इसप्रकार प्राकृतिक लिंगानुपात बिगड़–सा गया है।

भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 74.02% है और आश्चर्य की बात यह है की भारत में साक्षरता का स्तर बढ़ा है। कन्या भ्रूण हत्या एक सामाजिक अपराध है। इस अपराध के कारण न सिर्फ महिलाओं की संख्या में कमी आ रही है, अपितु कहीं न कहीं स्त्री–पुरुष अनुपात भी इससे प्रभावित हुआ है जिससे सामाजिक अव्यवस्था–सी उत्पन्न हो गई है। अत: व्यक्तियों में जागरूकता आवश्यक है ताकि व्यक्तियों का दृष्टिकोण कन्याओं के लिए व्यापक हो तथा वे उनके महत्व को समझें।

जिस भारतीय समाज में कन्या को देवी का स्वरूप समझा जाता है उसी समाज में न जाने कितने ही परिवारों द्वारा उन्हें इस दुनिया में आने का मौका ही नहीं दिया जाता है। कन्या भ्रूण हत्या का प्रभाव सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी पक्षों में दिखाई देता है। कन्या भ्रूण हत्या यह दर्शाती है कि पुत्र मोह के कारण न जाने कितनी मासूम बच्चियों को इस दुनिया को देखने का अधिकार नहीं दिया जाता है। कन्या भ्रूण हत्या का प्रभाव यह है कि आज भारत महिलाओं हेतु असुरक्षित स्थान में चौथे स्थान पर है। कन्या भ्रूण हत्या का प्रभाव लोगों की मानसिकता पर भी होता है। यह संकुचित मानसिकता का परिचायक है जो दर्शाता है कि महिलाओं को समाज में आज भी वह अधिकार प्राप्त नहीं है जो पुरुषों को प्राप्त है। समाज के सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक कारक दर्शाते हैं कि सामाजिक व्यवस्था लोगों की किसी भी सोच या मानसिकता हेतु जिम्मेदार होती है। फिर कन्या भ्रूण के प्रति सोच भी इन कारकों से न सिर्फ प्रभावित होती है अपितु उसे प्रभावित भी करती है।

शोध का औचित्य

कन्या भ्रूण हत्या समाज में कुरीति की भांति व्याप्त है। कहीं न कहीं यह अपराध समाज के नैतिक मूल्यों में गिरावट का संदेश देता है। यह अध्ययन महिलाओं को उनके

अधिकारों के प्रति सजग करने हेतु एवं पूरे समाज में एक जागरूकता रूपी संदेश देने हेतु किया जा रहा है ताकि महिला वर्ग एवं पुरुष वर्ग माहिलाओं के प्रति हो रहे इस अन्याय का पुरज़ोर विरोध करे। इस जागरूकता से कहीं न कहीं स्त्री–पुरुष अनुपात सामान्य हो सकेगा एवं समाज को नैतिक पतन से बचाया जा सकेगा। यह अध्ययन कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति एवं युवा पीढ़ी की उसके प्रति जागरूकता से संबंधित है ताकि वर्तमान स्थिति उजागर हो सके एवं इस अपराध को रोकने हेतु यथा संभव प्रयास किये जा सकें।

कुलकर्णी, एस. (1986): प्री नेटल सेक्स डिटरमीनेशन टेस्ट एंड फीमेल फिटीसाइड में एमनिओसिनटेसिस, अल्ट्रासाउंड जैसी तकनीकों के उपयोग से कन्या भ्रूण हत्या की दर में हुई वृद्धि पर प्रकाश डाला गया है तथा पीसीपीएनडीटी एक्ट (1994) को लोगों तक पहुंचाने हेतु जागरूकता शिविर जैसे कार्यक्रमों के आयोजन पर बल दिया गया है। अग्रवाल अनुराग (2002): 'एक्सप्लोडिंग मिथ्स ऑन फीमेल फिटीसाइड : एन इनडेप्थ स्टीड़ी ऑन द पंजाब केस' में महिलाओं की दर में होने वाली कमी का कारण कन्या भ्रूण हत्या को बताया गया है तथा इस अपराध की भयावहता से परिचित कराया गया है। कन्या भ्रूण हत्या से सामाजिक ताना–बाना बिगड़ सा गया है। इस अपराध को तब तक रोका नहीं जा सकता, जब तक व्यक्तियों का दृष्टिकोण कन्याओं को लेकर व्यापक नहीं होगा। बोस, आशीष और सेन, श्राबंती (2003): 'डार्कनेस एट नू' में भ्रूण हत्या से होने वाली हानियों को बताया गया है, साथ ही बेटियों को अपना समझने की धारणा को मुख्य माना गया है। अरामुदम गीता (2007) 'द ट्रैजिडी ऑफ फीमेल फिटीसाइड' में कन्या भ्रूण हत्या के करणों को बताते हुए इस अपराध की रोकथाम हेतु महिला जागरूकता को महत्वपूर्ण माना गया है। कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए वास्तव में महिलाओं को सशक्त होने की जरूरत है। देवेंद्र किरण और कुमार कृष्ण (2008): 'द डिसअपेयरिंग गर्ल चाइल्ड, इट इज पॉसिबल टु सेव हर' नामक शोध प्रपत्र में महिलाओं के स्वास्थ्य, उनके सांवेगिक और शिक्षा संबंधी जरूरतों की पूर्ति पर बल दिया है ताकि महिला जन्म लेने से पहले ही मृत्यु की गोद में समाहित न हो। इसके लिए महिला वर्ग को सशक्त होने पर बल दिया गया है। गर्डिया आलोक और स्तलिन प्रशांत (2008) ने भ्रूण हत्या को सामाजिक बुराई माना है और इस बुराई से लड़ने हेतु शिक्षा रूपी चेतना को महत्वपूर्ण माना है। कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए अभिभावकों की अभिवृत्ति भी मुख्य है। इस संबंध में दुबे ज्योति और सोनेजी भावना (2008) द्वारा किया गया शोध इस बात पर प्रकाश डालता है की बालिका शिक्षा के संबंध में अभिभावक की सोच बालिका की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज में कन्या भ्रूण हत्या के कारण लैंगिक असंतुलन

उत्पन्न हो गया है, जिससे स्त्री–पुरुष अनुपात प्रभावित हुआ है। अत: इस असंतुलन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण महत्वपूर्ण है, जिस पर पासवान सुबालाल एवं अम्बेडकर विनय (2008) ने प्रकाश डाला है। भारतीय नारी का इतिहास हमेशा से ही गौरवशाली रहा है। फिर भी पुरुष–प्रधान समाज में नारी को वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो पुरुषों को प्राप्त हैं। भार्गव नीरजा (2010) ने पुरुष प्रधान समाज में नारी की महत्ता को बताया है और इस बात पर प्रकाश डाला है कि संविधान ने भले ही नारी को पुरुष के समान ही अधिकार दिये हैं पर वास्तव में नारी को वह अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो पुरुष को प्राप्त हैं। अत: एक जागरूकता आवश्यक है ताकि नारी के अधिकारों में वृद्धि हो।

कन्या भ्रूण हत्या के लिए जिम्मेदार कारकों की पहचान द्वारा भी इस कुरीति को जड़ से मिटाया जा सकता है। पाण्डेय एम.के. (2010) ने अपने अध्ययन में कन्या भ्रूण हत्या हेतु जिम्मेदार कारक समाज को माना है। अत: यदि समाज जागरूक होगा तो इस बुराई को जड़ से मिटाया जा सकेगा। इसी संबंध में यादव, राजकुमार एवं शिवानी (2010): 'साउंड ऑफ साइलेंस – परसेप्सन ऑफ यूथ टूवर्ड्स इट' ने भी महिलाओं की स्थिति में गिरावट को सामाजिक अव्यवस्था मानते हुए समाज में जागरूकता फैलाने का आग्रह किया है ताकि महिलाओं को सशक्त व आत्मविश्वासी बनाया जा सके। लिंगम लक्ष्मी (2013): 'सेक्स डिटेक्शन टेस्ट एंड फीमेल फिटीसाइड : डिस्कृमिनेशन बिफोर बर्थ' में कन्या भ्रूण हत्या, बाल–विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए लड़कियों की ऐसी भावी पीढ़ी तैयार करने पर बल दिया है जो अपनी मौजूदा दोयम दर्जे वाली सामाजिक हैसियत को बदलने हेतु समाज की खिलाफत कर सके। इसके लिए निरंतर सरकारी सजगता की दरकार को भी महत्वपूर्ण माना गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा युवा पीढ़ी के विचारों से वर्तमान संदर्भ को उजागर किया गया है।

शोध के उद्देश्य

- कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में युवा महिला एवं युवा पुरुष की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में शिक्षित एवं अशिक्षित युवा पीढ़ी की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में विवाहित एवं अविवाहित युवा पीढ़ी की जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

- कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता के संबंध में युवा पीढ़ी के विभिन्न वर्गों (लिंगभेद, शैक्षिक स्तर एवं वैवाहिक स्तर) के स्वतंत्र प्रभाव व अन्त:क्रियात्मक प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएं

- H_{01} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में युवा महिला एवं युवा पुरुष की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- H_{02} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में शिक्षित एवं अशिक्षित युवा पीढ़ी की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- H_{03} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में विवाहित एवं अविवाहित युवा पीढ़ी की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
- H_{04} कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता के संबंध में युवा पीढ़ी के विभिन्न वर्गों (लिंगभेद, शैक्षिक स्तर एवं वैवाहिक स्तर) के स्वतंत्र प्रभाव व अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं होंगे।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णननात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। सर्वेक्षण विधि द्वारा युवा पीढ़ी के विभिन्न वर्गों में कन्या भ्रूण हत्या के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया गया है। जो व्यक्ति कन्या भ्रूण हत्या के प्रति जागरूक है अर्थात वह भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु उतना ही अधिक सजग है।

न्यादर्श

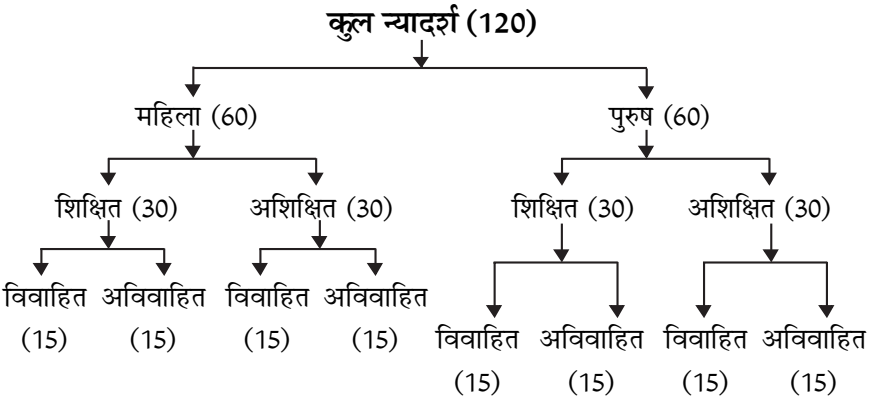

न्यादर्श चयन की विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श चयन हेतु स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया गया है।

शोध के उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्वनिर्मित उपकरण के रूप में कन्या भ्रूण हत्या जागरूकता मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन में टी टेस्ट एवं एनोवा का प्रयोग किया गया है।

परिणाम एवं व्याख्या

H_{01} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में युवा महिला एवं युवा पुरुष की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

लिंगानुसार वितरण युवा महिला एवं युवा पुरुष

क्र. सं.	तुलनात्मक समूह	N	मध्यमान	मानक विचलन	t (टी)	स्वतंत्रता की कोटि (df)	t की सार्थकता	परिणाम
1.	युवा महिला	60	170.8	13.8	0.55	118	असार्थक	स्वीकृत
2.	युवा पुरुष	60	169.5	12				

(0.05 सार्थकता स्तर पर) परिणाम–परिकल्पना स्वीकृत हुई।

कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में युवा महिला एवं युवा पुरुष की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

H_{02} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में शिक्षित एवं अशिक्षित युवा पीढ़ी की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

शैक्षिक योग्यतानुसार वितरण : शिक्षित एवं अशिक्षित युवा

क्र. सं.	तुलनात्मक समूह	N	मध्यमान	मानक विचलन	t (टी)	स्वतंत्रता की कोटि (df)	t की सार्थकता	परिणाम
1.	शिक्षित युवा	60	175.1	11.1	3.84	118	सार्थक	अस्वीकृत
2.	अशिक्षित युवा	60	166.16	13.6				

(0.05 सार्थकता स्तर पर) परिणाम – परिकल्पना अस्वीकृत हुई।

कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में शिक्षित एवं अशिक्षित युवा पीढ़ी की जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया।

H_{03} कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में विवाहित एवं अविवाहित युवा पीढ़ी की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

वैवाहिक स्तरानुसार वितरण : विवाहित एवं अविवाहित युवा वर्ग

क्र. सं.	तुलनात्मक समूह	N	मध्यमान	मानक विचलन	t (टी)	स्वतंत्रता की कोटि (df)	t की सार्थकता	परिणाम
1.	विवाहित युवा वर्ग	60	169.83	15.8	0.31	118	असार्थक	स्वीकृत
2	अविवाहित युवा वर्ग	60	175.66	9.5				

(0.05 सार्थकता स्तर पर) परिणाम–परिकल्पना स्वीकृत हुई।

कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में विवाहित एवं अविवाहित युवा पीढ़ी की जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

H_{04} कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता के संबंध में युवा पीढ़ी के विभिन्न वर्गों (लिंगभेद, शैक्षिक स्तर एवं वैवाहिक स्तर) के स्वतंत्र प्रभाव व अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं होंगे।

लिंग आधारित कारक, वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक योग्यता आधारित कारकों के स्वतंत्र प्रभाव व अन्त:क्रियात्मक प्रभाव की गणना हेतु वितरण

	महिला A1		पुरुष A2	
स्रोत	शिक्षित C1	अशिक्षित C2	शिक्षित C1	अशिक्षित C2
विवाहित B1	A1B1C1	A1B1C2	A2B1C1	A2B1C2
अविवाहित B2	A1B2C1	A1B2C2	A2B2C1	A2B2C2

स्रोत	वर्गों का योग SS	स्वतंत्रता की कोटि df	मध्यमान वर्ग MS	एफ मूल्य	एफ मूल्य की सार्थकता
A	18.41	1	18.41	0.12	असार्थक
B	20.01	1	20.01	0.14	असार्थक
C	2511.67	1	2511.67	16.98	0.01 स्तर पर सार्थक
AB	25.21	1	25.21	0.17	असार्थक
AC	845	1	845	5.71	0.05 स्तर पर सार्थक
BC	255.21	1	255.21	1.73	असार्थक
ABC	696	1	696	4.71	0.05 स्तर पर सार्थक
Error–त्रुटि	16565.07	112	147.9		
कुल	20936.58	119			

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि–

- लिंग आधारित कारक A के वर्गों का योग 18.41, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 18.41 एवं एफ़ अनुपात 0.12 प्राप्त हुआ।
- वैवाहिक स्तर आधारित कारक B के वर्गों का योग 20.01,1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 20.01 एवं एफ़ अनुपात 0.14 प्राप्त हुआ।
- शैक्षिक योग्यता आधारित कारक C के वर्गों का योग 2511.67, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 2511.67 एवं एफ अनुपात 16.98 प्राप्त हुआ।

स्वतंत्र प्रभाव की गणना

सार्थकता की जाँच के 0.05 स्तर पर तालिका मान 3.92 एवं 0.01 स्तर पर तालिका मान 6.85 है। लिंग आधारित कारक व वैवाहिक स्तर आधारित कारक का एफ़ अनुपात क्रमशः 0.12 व 0.14 है। चूंकि गणना द्वारा प्राप्त मान दोनों ही स्तरों पर तालिका मान से कम है। अतः एफ़ अनुपात लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारक के स्वतंत्र प्रभाव के रूप में असार्थक है। शैक्षिक योग्यता आधारित कारक हेतु एफ़ अनुपात 16.98 है। चूंकि यह मान 0.01 स्तर के तालिका मान 6.85 से अधिक है, अतः एफ़ अनुपात 0.01 पर सार्थक है।

प्रथम कोटि अन्त:क्रियात्मक प्रभाव की गणना

- लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AB के वर्गों का योग 25.21, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 25.21 एवं एफ़ अनुपात 0.17 प्राप्त हुआ।
- लिंग आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AC के वर्गों का योग 845, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 845 21 एवं एफ़ अनुपात 5.71 प्राप्त हुआ।
- वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव BC के वर्गों का योग 255.21, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर मध्यमान वर्ग 255.21 एवं एफ़ अनुपात 1.73 प्राप्त हुआ।

सार्थकता की जांच के 0.05 स्तर पर तालिका मान 3.92 एवं 0.01 स्तर पर तालिका मान 6.85 है। लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AB हेतु एफ़ अनुपात 0.17 प्राप्त हुआ। चूंकि गणना द्वारा प्राप्त मान दोनों ही स्तरों पर तालिका मान से कम है। अत: एफ़ अनुपात लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AB हेतु असार्थक है।

लिंग आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AC हेतु एफ़ अनुपात 5.71 प्राप्त हुआ। चूंकि गणना द्वारा प्राप्त मान सार्थकता की जाँच के 0.05 स्तर पर तालिका मान 3.92 से अधिक है। अत: एफ़ अनुपात लिंग आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव AC हेतु 0.05 स्तर पर सार्थक है।

वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव BC हेतु एफ़ अनुपात 1.73 प्राप्त हुआ। चूंकि गणना द्वारा प्राप्त मान दोनों ही स्तरों पर तालिका मान से कम है। अत: एफ़ अनुपात वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव BC हेतु असार्थक है।

दूसरे कोटि की अन्त:क्रियात्मक प्रभाव

लिंग आधारित कारक, वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारकों के सयुंक्त प्रभाव (ABC) हेतु वर्गों का योग 696, 1 स्वतंत्रता की कोटि पर तथा मध्यमान वर्ग 696 व F अनुपात 4.71 प्राप्त हुआ।

तालिकानुसार सार्थकता की जांच के 0.05 स्तर पर तालिका मान 3.92 एवं 0.01 स्तर पर 6.85 है। तीनों कारकों के अन्त:क्रियात्मक प्रभाव (ABC) हेतु एफ़ अनुपात

4.71 प्राप्त हुआ। गणना द्वारा प्राप्त मान सार्थकता की जांच के 0.05 स्तर पर तालिका मान 3.92 से अधिक है। अत: (ABC) तीनों कारकों के अन्त:क्रियात्मक प्रभाव हेतु F अनुपात 0.05 स्तर पर सार्थक होगा।

शोधकर्ता द्वारा पाया गया कि लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारक कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता पर सार्थक प्रभाव नहीं डालते हैं। परन्तु शैक्षिक स्तर आधारित कारक कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता पर सार्थक प्रभाव डालते हैं।

प्रथम कोटि की अन्त:क्रियात्मक प्रभाव में शोधकर्ता द्वारा पाया गया कि लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारक (AB) एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारक व शैक्षिक स्तर आधारित कारक (BC) कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता पर सार्थक प्रभाव नहीं डालते हैं। परन्तु लिंग आधारित कारक व शैक्षिक स्तर आधारित कारक (AC) कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता पर सार्थक प्रभाव डालते हैं, 0.05 स्तर पर।

दूसरे कोटि की अन्त:क्रियात्मक प्रभाव में शोधकर्ता द्वारा पाया गया कि लिंग आधारित कारक, वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक स्तर आधारित कारक (ABC) का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता पर सार्थक प्रभाव डालते हैं, 0.05 स्तर पर। अत: शिक्षा या शैक्षिक स्तर आधारित कारक कन्या भ्रूण हत्या संबंधी युवा पीढ़ी की जागरूकता को प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

- लिंग आधारित कारक भ्रूण हत्या संबंधी जागरूकता पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं।
- शैक्षिक योग्यता आधारित कारक कन्या भ्रूण हत्या संबंधी जागरूकता पर कोई प्रभाव डालते हैं।
- वैवाहिक स्तर आधारित कारक कन्या भ्रूण हत्या संबंधी जागरूकता पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं।
- लिंग आधारित कारक एवं वैवाहिक स्तर आधारित कारक (संयुक्त रूप से) कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं।
- लिंग आधारित कारक एवं शैक्षिक योग्यता आधारित कारक (संयुक्त रूप से) कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता पर प्रभाव डालते हैं।

- वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक योग्यता आधारित कारक (संयुक्त रूप से) कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता पर प्रभाव नहीं डालते हैं।
- लिंग आधारित कारक, वैवाहिक स्तर आधारित कारक एवं शैक्षिक योग्यता आधारित कारक (संयुक्त रूप से) कन्या भ्रूण हत्या की जागरूकता पर प्रभाव डालते हैं।

सुझाव

- शिक्षा के प्रचार प्रसार द्वारा कन्या भ्रूण हत्या की दर को कम किया जा सकता है।
- विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन स्तर पर महिला सशक्तिकरण एवं भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु अनेक कार्यक्रम चलाकर कन्या भ्रूण हत्या की दर को कम किया जा सकता है। इसके लिए मीडिया की सहायता भी ली जा सकती है।
- पुत्री के जन्म पर आर्थिक रूप से कमजोर माता-पिता को आर्थिक सहायता पहुंचाकर भी कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु कदम बढ़ाए जा सकते हैं।
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी व्यापक रूप से कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं जिसमें युवा पीढ़ी को कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति से अवगत कराते हुए उससे होने वाली हानियों से उन्हें परिचित कराना चाहिये। यह भी भ्रूण हत्या की रोकथाम हेतु सार्थक प्रयास है।
- महिलाओं की सुरक्षा निश्चित करने हेतु एवं उनके अधिकारों का हनन न हो, इसके लिए भ्रूण परीक्षण पर प्रतिबंध लगाना चाहिये।

शैक्षिक महत्व

कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम से लिंगानुपात सामान्य हो पाएगा एवं महिलाओं की संख्या सामान्य हो सकेगी, जो अभी काफी कम है। इस प्रकार समाज को नैतिक पतन से बचाया जा सकेगा। शोधकर्ता द्वारा इस शोध के माध्यम से युवा पीढ़ी की कन्या भ्रूण हत्या संबंधी जागरूकता पर प्रकाश डाला गया है ताकि इस अपराध की भयावहकता को सामने लाया जा सके।

संदर्भ

कुलकर्णी, एस. (1986); *प्री नेटल सेक्स डिटरमीनेशन टेस्ट एंड फीमेल फिटीसाइड, द फाउंडेशन ऑफ रिसर्च इन कम्यूनिटी हैल्थ,* बॉम्बे, पृ.-54-58

अग्रवाल, अनुराग (2002); *एक्सप्लोडिंग मिथ्स ऑन फीमेल फिटीसाइड : एन इनडेप्थ स्टीड़ी ऑन द पंजाब केस,* पंजाब हैल्थ सिस्टम कार्पोरेशन

बोस, आशीषा और सेन, श्राबंती (2003); *डार्कनेस एट नून,* वोलेंटरी हैल्थ असोशिएशन ऑफ इंडिया, हैल्थ कार्पोरेशन इंडिया लिमिटेड, पृ–177–179

गीता, अरावमुदन (2007); द *ट्रैजिडि ऑफ फीमेल फीटीसाइड,* पैंगुइन बुक प्रकाशन .

गार्डिया, आलोक एवं स्तलिन, प्रशांत (2008); *कन्या भ्रूण हत्या की सामाजिक समस्या,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2008, पृ–14–15

देवेंद्र, किरण एवं कुमार कृषण (2008); द *डिसअपेयरिंग गर्ल चाइल्ड, इट इज पॉसिबल टु सेव हर!* द प्राइमरी टीचर, वॉल्यूम XXXIII, अंक 1-2, जनवरी एवं अप्रैल 2008, पृ–54–55

दुबे, ज्योति एवं सोनेजी, भावना (2008); *बालिका शिक्षा की समस्याएं तथा उसके प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति के संबंध में एक अध्ययन,* मोर्डेन एजुकेशनल रिसर्च इन इंडिया, अ क्वाटरनरी जर्नल ऑफ एडुकेशनल रिसर्च, वर्ष 2, वॉल्यूम IV, अंक 3, जुलाई–सितम्बर 2009, पृ.–12–18

पासवान, सुबालाल एवं अम्बदेकर, विनय (2008); *कन्या भ्रूण हत्या से लैंगिक असंतुलन, एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण,* मोर्डेन एजुकेशनल रिसर्च इन इंडिया, अ क्वाटरनरी जर्नल ऑफ एडुकेशनल रिसर्च, वर्ष 2, वॉल्यूम IV, अंक 3, अक्तूबर–दिसम्बर 2009, पृ.–27–32

भार्गव, नीरजा (2010); *पुरुष प्रधान समाज में नारी की महत्ता,* शिक्षा–मित्र, वर्ष 3, अंक 1, सितंबर 2010, पृ.–44–46

पाण्डेय, एम. के. (2010); *कन्या भ्रूण हत्या एवं महिला सशक्तिकरण;* एजुकेशनल वेव्स – अ नेशनल रिसर्च जर्नल, वॉल्यूम I, अंक 1, जनवरी–मार्च 2011, पृ. 11–18

यादव, राजकुमार एवं शिवानी (2010); *साउंड ऑफ साइलेंस – परसेप्सन ऑफ यूथ टूवर्ड्स इट,* एडुसर्च, वॉल्यूम I, अंक 2, अक्टूबर 2012, पृ. 12–13

लिंगम लक्ष्मी (2013); *सेक्स डिटेक्शन टेस्ट एंड फीमेल फिटीसाइडः डिस्क्रिमिनेशन बिफोर बर्थ,* लेंसेट पब्लिकेशन, जनवरी 2013

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति उत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृति

निशान्त राय* एवं **सीमा सिंह****

मूल्यांकन पद का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होता है जहाँ इसका आशय परिणामों की वांछनीयता को निर्धारित करना होता है। मूल्यांकन के द्वारा ही शिक्षक अपने विद्यार्थियों में हृदयस्थ हुए ज्ञान की मात्रा को ज्ञात कर पाता है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इसके द्वारा शिक्षक अपने विद्यार्थियों में वांछित ज्ञान के स्तर को समझ पाता है।

विद्यार्थियों के ज्ञान की वांछनीयता मूल्यांकन की किस पद्धति से ज्ञात की जाए यह सदैव से एक जटिल प्रश्न रहा है। शिक्षाविद् हमेशा से एक ऐसी मूल्यांकन व्यवस्था की खोज में रहे हैं जो विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समग्रतापूर्वक मूल्यांकित कर सके। मूल्यांकन की इस प्रक्रिया को उचित रूप देने के लिए शिक्षाविदों ने अपने प्रयास जारी रखे हैं। मूल्यांकन के बारे में एन.सी.एफ. (2005) में उल्लिखित है कि ''शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा के तनाव एवं दुश्चिन्ता से जुड़ा है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं यदि वे स्कूली शिक्षा में जड़ें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तन्त्र के अवरोधों से नहीं जूझ पाते (एन.सी.एफ., 2005)।''

मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जो यह स्पष्ट करती है कि वांछित उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री नार्मन ई. ग्रोनलुण्ड (1962) के अनुसार मूल्यांकन को विद्यार्थियों के द्वारा प्राप्त किए गए शैक्षिक उद्देश्यों की सीमा को ज्ञात करने की क्रमबद्ध प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थियों के व्यवहार के गुणात्मक व मात्रात्मक वर्णन के साथ-साथ व्यवहार की वांछनीयता से संबंधित मूल्य निर्धारण भी निहित रहता है। मूल्यांकन प्रक्रिया में शिक्षण

* एम.एड. प्रशिक्षार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उद्देश्यों की प्राप्ति की वांछनीयता को देखा जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंग शिक्षा के उद्देश्य, अधिगम-क्रियाएं तथा व्यवहार-परिवर्तन होते हैं। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यालय में अधिगम-क्रियाएं आयोजित की जाती हैं जिनसे विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार में आए इन परिवर्तनों की तुलना वांछित परिवर्तनों से करके मूल्यांकन किया जाता है (ईबेल, 1965 पृ. 67)।

शैक्षिक मूल्यांकन प्रक्रिया विभिन्न प्रकार की होती है। इसमें संरचनात्मक मूल्यांकन से तात्पर्य ऐसी मूल्यांकन पद्धति से है जिसमें मूल्यांकन के आधार पर सुधार सम्भव हो अर्थात् किसी निर्माणाधीन कार्यक्रम, योजना, प्रक्रिया या सामग्री को अन्तिम रूप देने से पूर्व मूल्यांकित किया जा सके तथा उसमें आने वाली त्रुटियाँ दूर हो सकें। योगात्मक मूल्यांकन से आशय किसी शैक्षिक कार्यक्रम, योजना या सामग्री की समग्र वांछनीयता को ज्ञात करने से है अर्थात् मूल्यांकन की यह पद्धति शैक्षिक कार्यक्रमों, योजनाओं आदि को लागू रखने या उन्हें समाप्त करने के संबंध में निर्णय करती है। इसी प्रकार निदानात्मक मूल्यांकन यह स्पष्ट करता है कि ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में किस प्रकार की बाधाएं उत्पन्न हो रही हैं। इस मूल्यांकन पद्धति के माध्यम से विद्यार्थियों के ज्ञान प्राप्ति में आ रही बाधाओं को ज्ञात किया जाता है तथा इन बाधाओं को ज्ञात करने के पश्चात् विद्यार्थियों की ज्ञान प्राप्ति की बाधाओं को दूर किया जाता है जिससे उन्हें ज्ञान प्राप्ति में आसानी होती है अर्थात् निदानात्मक मूल्यांकन ज्ञान मार्ग की बाधाओं को ज्ञात करता है।

मूल्यांकन के इन विभिन्न माध्यमों से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के समग्र पक्षों का आकलन सम्भव नहीं हो पाता है। विद्यार्थियों के शैक्षिक पक्षों के साथ-साथ सह-शैक्षिक पक्षों का आकलन भी अब अत्यन्त आवश्यक हो गया है जिससे कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण आकलन सम्भव हो एवं विद्यार्थियों की रूचि एवं योग्यता की पुष्ट जानकारी प्राप्त हो सके जिससे विद्यार्थियों को उनकी रूचि एवं योग्यता से संबंधित क्षेत्रों में जाने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सके।

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के समग्र पक्षों के मूल्यांकन के लिए शिक्षाशास्त्रियों ने सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के सम्प्रत्यय का विकास किया है जिससे कि विद्यार्थियों के शैक्षिक पक्षों के साथ-साथ सह-शैक्षिक पक्षों का भी मूल्यांकन सुगमतापूर्वक किया जा सके।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन विद्यार्थियों के विकास के समस्त क्षेत्रों का विस्तृत एवं नियमित आकलन है जिसमें विभिन्न विधियों एवं उपकरणों के माध्यम से विद्यार्थियों का आकलन किया जाता है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में तीन शब्द हैं सतत, व्यापक एवं मूल्यांकन। इन तीनों शब्दों का अर्थ इस प्रकार हैं–

सतत

सतत शब्द का शाब्दिक आशय है - लगातार। सतत के साथ आकलन शब्द जुड़ा है अर्थात् निरन्तर आकलन करना। सतत आकलन एवं कक्षा शिक्षण साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाएं हैं जिनमें विद्यार्थियों का आकलन सतत रूप से किया जाता है जो पूरे वर्ष औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से चलता रहता है। इसमें न केवल शैक्षिक क्रियाकलाप अपितु सह-शैक्षिक क्रियाकलापों का सतत आकलन किया जाता है जिससे विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन के साथ-साथ यह भी ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों ने क्या सीखा एवं कहाँ उनके साथ कार्य करने की आवश्यकता है (पाण्डेय 2011, पृ. 166)।

व्यापक

व्यापकता से आशय विद्यार्थी के समस्त कौशलों/गुणों के विकास से है जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक विकास भी सम्मिलित हैं जो एक अच्छे नागरिक के लिए आवश्यक हैं। यह व्यापकता विद्यार्थी जीवन के संज्ञानात्मक एवं सह-संज्ञानात्मक दोनों क्षेत्रों में है (चक्रवर्ती व अन्य 2011, पृ. 9)।

मूल्यांकन

मूल्यांकन कक्षा अधिगम के साथ-साथ विद्यार्थियों के सीखने की गति, अवधारणा, ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल, व्यवहार, अनुभव आदि को जानने के लिए योजनाबद्ध रूप से साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण, व्याख्या एवं सुझाव देने की प्रक्रिया है (चक्रवर्ती व अन्य 2011, पृ. 10)। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (2009) के अनुसार ''सतत एवं व्यापक मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जो शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक विकास के आकलन से विद्यार्थियों को आनन्ददायक परिस्थिति प्रदान करती है (सी.बी.एस.ई. 2009)।''

एन.पी.ई. 1986 के अनुसार ''सतत एवं व्यापक मूल्यांकन जिसमें अनुदेशन की पूरी अवधि तक प्रदत्त शिक्षा के शैक्षणिक एवं शैक्षणिकेतर, दोनों ही पक्ष शामिल हैं, को क्रियान्वित करता है (एन.पी.ई. 1986, पृ. 87)।''

इस प्रकार इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन निरन्तर एवं नियमित चलने वाली प्रक्रिया है जो कक्षा अधिगम एवं शिक्षण प्रक्रिया के साथ-साथ चलती है। इसमें सीखना-सिखाना एवं मूल्यांकन सभी साथ-साथ चलते हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का विकास

परीक्षा शिक्षा प्रणाली का अनिवार्य अंग है। परीक्षा के द्वारा ही यह स्पष्ट हो पाता है कि विद्यार्थियों में ज्ञान की पहुँच कहाँ तक हो पाई है तथा कहाँ सुधार की आवश्यकता है? शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता परीक्षा सुधार को दी गई है। लगभग सभी शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत थे कि परीक्षाओं में आवश्यक सुधाार करके शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रासंगिक बनाया जा सकता है। हण्टर आयोग (1882), सैडलर आयोग (1917), हर्टोग समिति (1929) ने सत्रान्त परीक्षाओं की कटु आलोचना की तथा परीक्षा प्रणाली में सुधार की वकालत की (नायक व नुरूल्ला 1974, पृ. 198)। रैले आयोग (1902) ने स्पष्ट किया कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में अध्ययन कार्य परीक्षा के अधीन है जबकि परीक्षा अध्ययन के अधीन होनी चहिए। हर्टोग समिति (1929) ने भी शिक्षा में परीक्षा पर जोर का विरोध किया था (नायक व नुरूल्ला 1974, पृ. 212-14)। भारत में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा का विकास यहाँ की परीक्षा प्रणाली के प्रति असन्तोष एवं उसकी अविश्वसनीयता से जुड़ा है। सन् 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित विविध शिक्षा आयोग तथा समितियाँ समय-समय पर इस असन्तोष को अभिव्यक्त करती रही हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने इसका वर्णन करते हुए कहा कि परीक्षा हमारी शिक्षा व्यवस्था की व्यापक बुराई है। यह परीक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को स्मरण करने की एक मशीन में परिवर्तित कर देती है एवं शिक्षा को ज्ञान के विशाल भण्डार का समानार्थी मानती है (गुप्ता 2009, पृ. 65)। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने परीक्षा प्रणाली के दोषों का वर्णन करते हुए कहा कि परीक्षा इस समय पाठ्यक्रम को निर्धारित कर रही है। पाठ्यक्रम में क्या ज्यादा महत्त्वपूर्ण है यह इस आधार पर निर्धारित किया जाता है कि परीक्षा में क्या ज्यादा पूछा जायेगा? अतः इस परीक्षा प्रणाली में सुधार करने के लिए अनेक परिवर्तनों की आवश्यकता है। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सतत एवं व्यापक आन्तरिक मूल्यांकन है (मुदालियर 1953, पृ. 132)।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने परीक्षा प्रणाली में सुधार करने हेतु निम्न संस्तुति प्रदान की थी–

''प्रत्येक विद्यालय द्वारा अपने ही स्तर पर किया जाने वाला आन्तरिक आकलन या मूल्यांकन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है तथा इसको अधिकाधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। यह मूल्यांकन व्यापक रूप से होना चाहिए जिससे विद्यार्थी के विकास के उन सभी पक्षों का आकलन हो जो वाह्य परीक्षाओं द्वारा मापित होते हैं तथा व्यक्तित्व के उन विशेषकों, रूचियों एवं अभिवृत्तियों का भी जो उनके द्वारा नहीं हो पातीं। विद्यालय के सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यों के तहत आन्तरिक मूल्यांकन समाविष्ट होना चाहिए तथा इसका उपयोग शिक्षा एवं शिक्षण में सुधार के लिए होना चाहिए (भारतीय शिक्षा आयोग 1966, पृ. 41)।''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 ने परीक्षा प्रणाली में सुधार की बात करते हुए स्पष्ट किया था कि कक्षा दस की बोर्ड परीक्षा को स्वैच्छिक बना देना चाहिए एवं जो बोर्ड का प्रमाण पत्र नहीं लेना चाहते हैं उन्हें आन्तरिक विद्यालयीय परीक्षा देने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। व्यापकता का वर्णन करते हुए इसमें कहा गया था कि विद्यार्थियों को विभिन्न क्षेत्रों में सोचने के योग्य बनाना चाहिए तथा विद्यार्थियों को अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप सीखने के अवसर प्राप्त होने चाहिए (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005, पृ. 38)।

परीक्षा प्रणाली में व्याप्त इन दोनों के निराकरण हेतु परीक्षा प्रणाली में सुधार आवश्यक हो गया जिससे इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक दोनों पक्षों का समग्र आकलन सम्भव हो सके। विद्यार्थियों के समग्र आकलन एवं उनके मन से परीक्षा के भय को समाप्त करने के लिए केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद ने सत्र 2010-11 से दसवीं कक्षा में बोर्ड की परीक्षा वैकल्पिक कर दी तथा विद्यार्थियों के समक्ष सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का विकल्प प्रस्तुत किया। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थियों का वर्षपर्यन्त मूल्यांकन किया जाता है तथा उसके आधार पर उनका आकलन किया जाता है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थियों को अंकों के स्थान पर ग्रेड प्रदान किया जाता है जिससे कि विद्यार्थियों का विभाजन एक सौ एक अंकों की श्रेणियों की तुलना में नौ ग्रेडों में ही हो सके तथा उनमें भेदभाव एवं मानसिक तनाव को नियन्त्रित किया जा सके। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद पहले वर्ष में केवल एक बार परीक्षा का आयोजन करता था परन्तु सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के लागू होने के बाद अब परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन आया है। अब दो भिन्न प्रकार की परीक्षाएं आयोजित की जा रही है - पहली संरचनात्मक एवं दूसरी योगात्मक। संरचनात्मक मूल्यांकन में विद्यार्थियों के कक्षा एवं कक्षा के बाहर के व्यवहार

का आकलन परीक्षण, परियोजना, दत्तकार्य एवं मौखिक परीक्षणों के माध्यम से किया जाता है तथा इन परीक्षणों के परिणाम के आधार पर उनकी त्रुटियों को बताया जाता है तथा उन त्रुटियों में सुधार के सुझाव दिये जाते हैं। संरचनात्मक मूल्यांकन में सम्पूर्ण अंकों के चालीस प्रतिशत को शामिल किया जाता है।

योगात्मक मूल्यांकन में तीन घण्टे के प्रश्न पत्र होते हैं जिनकी परीक्षाएं वर्ष में दो बार आयोजित की जाती हैं। पहला योगात्मक आकलन प्रथम दो संरचनात्मक आकलनों के बाद किया जाता है जबकि दूसरा योगात्मक आकलन अगले दो संरचनात्मक आकलनों के बाद किया जाता है। प्रत्येक योगात्मक आकलन तीस प्रतिशत भार वहन करता है। प्रथम योगात्मक आकलन में पाठ्यक्रम के निर्धारित भागों से पूछे गए प्रश्न अगले योगात्मक आकलन में नहीं पूछे जाते हैं। अपितु विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के पूर्णतया नये बिन्दुओं पर ध्यान केंद्रित करना होता है (राव एवं राव 2004, पृ. 14)।

वर्ष के अन्त में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद संरचनात्मक एवं योगात्मक आकलन के अंकों को जोड़कर अन्तिम परिणाम घोषित करती है। यह परिणाम प्रतिशत पर आधारित होता है। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद इस प्रतिशत परिणाम को सी.जी. पी.ए. (C.G.P.A.) में एवं तत्पश्चात् सी.जी.पी.ए. को ग्रेड में बदलकर परिणाम घोषित करती है (पाण्डेय 2011, पृ 184)।

अध्ययन की आवश्यकता

राव एवं राव (2004) तथा राव (2006) ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि शिक्षकों की मूल्यांकन प्रक्रिया पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रशिक्षण का सकारात्मक प्रभाव पड़ा तथा उनकी मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार आया। पूजा (2011) एवं प्रकाश (2013) ने सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोण व जागरूकता का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि ज्यादातर शिक्षकों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति जागरूकता नहीं है तथा सरकारी प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रत्यक्षीकरण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। बृजेश (2012) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि छात्राध्यापकों/छात्राधयापिकाओं में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति जागरूकता है तथा इनकी अभिवृत्ति में लिंग, विषय-समूह एवं शैक्षिक आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अभी तक के जितने भी अध्ययन हैं उनमें किसी के द्वारा सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति विद्यार्थियों के विचार या अभिवृत्ति जानने का प्रयास नहीं किया

गया है। अत: ज्ञान के इस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए यहाँ पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति उत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया जा रहा है।

समस्या कथन

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति उत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति संबंधित पदों की व्याख्या

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन : सतत एवं व्यापक मूल्यांकन से आशय मूल्यांकन की ऐसी प्रक्रिया से है जो शिक्षण प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनकर उसके समस्त क्षेत्रों का सतत एवं नियमित आकलन करे तथा संज्ञानात्मक एवं संज्ञानेतर पक्षों को भी मूल्यांकन की परिधि में लाए जिससे कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में मदद मिल सके।

विद्यार्थी : विद्यार्थी शब्द से अभिप्राय वाराणसी नगर में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद एवं यू.पी. बोर्ड के सत्र 2012–13 में अध्ययनरत उत्तर माध्यमिक स्तर (11वीं एवं 12वीं) के छात्रों एवं छात्राओं से है।

अभिवृत्ति : अभिवृत्ति किसी विशिष्ट प्रकरण के प्रति व्यक्ति की प्रवृत्तियों व भावनाओं, पूर्वग्रहों अथवा पक्षपातों, पूर्व निर्मित अभिप्रायों, विचारों, भयों, दबावों तथा मान्यताओं का कुल योग है। इस अध्ययन में अभिवृत्ति से आशय सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति छात्रों एवं छात्राओं की अभिवृत्ति से है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति छात्रों एवं छात्राओं की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

परिकल्पना

निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया तथा उनका परीक्षण 0.05 विश्वसनीयता स्तर पर किया गया :

1. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति छात्रों एवं छात्राओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन में विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का प्रतिदर्श

वाराणसी शहर में स्थित यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के 11वीं एवं 12वीं के विद्यार्थी जो सत्र 2012–13 में अध्ययनरत हैं, अध्ययन की जनसंख्या के अन्तर्गत आते हैं। अध्ययन 200 विद्यार्थियों, 100 यू.पी. बोर्ड एवं 100 सी.बी.एस.ई. बोर्ड के प्रतिदर्श पर किया गया। प्रतिदर्श चयन विधि गुच्छ/समूह प्रतिदर्श थी क्योंकि विद्यार्थियों को उनके विद्यालयों द्वारा विभिन्न समूहों में विभक्त कर दिया गया था। इस अध्ययन में आँकड़ों के संग्रहण के लिए एक स्वनिर्मित सतत एवं व्यापक मूल्यांकन अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया जिसमें कुल तीस पद थे।

परिणाम एवं व्याख्या

आँकड़ों के संग्रहण के पश्चात् उनके साथ गणितीय संक्रिया करने पर जो परिणाम प्राप्त हुए उनका वर्णन इस प्रकार है :

तालिका–1

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति छात्रों एवं छात्राओं की अभिवृत्ति

क्रम सं.	लिंग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
1.	छात्र	10	36.71	7.14	0.65	0.05
2.	छात्रा	91	36.21	8.04		
(टी = 1.98, मुक्तांश = 198)						

व्याख्या

तालिका–1 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

के प्रति छात्रों एवं छात्राओं के अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच सार्थक अन्तर नहीं है क्योंकि टी का मान 0.65 है जो मुक्तांश 198 के लिए 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति में विद्यार्थियों में लिंग के आधार पर कोई विभेद नहीं है।

तालिका–2

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

क्रम सं	बोर्ड	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
1.	सी.बी.एस.ई.	100	34.21	7.09	2.87	0.05
2.	यू.पी.	100	38.66	7.62		
(टी = 1.98, मुक्तांश = 198)						

व्याख्या

तालिका–2 से स्पष्ट है कि यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर है क्योंकि टी का मान 2.87 है जो मुक्तांश 198 के लिए 0.05 स्तर पर सार्थक है अर्थात् सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों में समान रूप से अभिवृत्ति विकसित नहीं हुई है।

तालिका–3

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

क्रम सं	अनुदेशन का माध्यम	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
1.	हिन्दी	139	38.37	7.39	7.92	0.05
2.	अंग्रेजी	61	32.03	6.37		
(टी = 1.98, मुक्तांश = 198)						

व्याख्या

तालिका-3 से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच सार्थक अन्तर है क्योंकि टी का मान 7.92 है जो कि मुक्तांश 198 के लिए 0.05 स्तर पर सार्थक है अर्थात् अनुदशेन के माध्यम ने सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति विकसित होने वाली अभिवृत्ति को प्रभावित किया है।

इस अध्ययन में प्रयुक्त आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति में यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई बोर्ड के विद्यार्थियों तथा हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है, वहीं सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति उत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में लिंग के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि यू.पी. बोर्ड के विद्यार्थियों की सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति उस प्रकार से विकसित नहीं हो पायी जिस प्रकार से सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों में विकसित हुई। इसी प्रकार अनुदेशन के माध्यम ने भी विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर प्रभाव डाला। अत: स्पष्ट होता है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यार्थियों में समान रूप से क्रियान्वित किया जाये तथा अनुदेशन के माध्यम से आने वाले अन्तर को भी दूर करने के लिए इसे हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों में इस प्रकार से क्रियान्वित करें कि उनमें सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति एक समान अभिवृत्ति विकसित हो सके जिससे कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त कर सके।

सीमाएँ

इस अध्ययन के अवलोकन से इसकी सीमाओं का पता चलता है, जिसके कारण इसके निष्कर्षों के सामान्यीकरण की सीमाएँ भी स्पष्ट है:

- केवल वाराणसी शहर में ही यह अध्ययन किया गया।
- केवल चार विद्यालयों के विद्यार्थियों का चयन किया गया।

- शैक्षिक सत्र 2011–12 के विद्यार्थियों की ही अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया।

शैक्षिक निहितार्थ

अन्य अध्ययनों की तरह, शैक्षिक अध्ययन भी शैक्षिक समस्याओं को हल करने के लिए किये जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन से निम्न निहितार्थ निकाले गये हैं –

- यह अध्ययन अनुदेशन के माध्यम को प्रभावपूर्ण बनाने में सहायता प्रदान करेगा।
- इससे बोर्ड को अपने पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में सुधार करने में मदद मिलेगी।

संदर्भ

ईबेल, आर.एल. (1965). *मेजरिंग एजुकेशनल एचीवमेंट,* एनग्लीवुड क्लिफ, एन.जे. : प्रेन्टिस हाल.

कसेरा, प्रकाशचन्द्र (2013). *अवेयरनेस ऑफ द टीचर्स टूवर्ड कॉन्टीनिवस एण्ड कॉम्प्रीहेन्सिव इवैल्यूएशन.* अप्रकाशित लघु शोध, बी.एच.यू., वाराणसी.

गुप्ता, एस.पी. (2009). *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.

गुप्ता, एस.पी. (2010). *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.

चक्रवर्ती, ज्योति एवं अन्य (2011). *सतत एवं व्यापक मूल्यांकन निर्देशिका* रायपुर: एन.सी.ई. आर.टी.

नायक, जे.पी. एवं नुरुल्ला, सैय्यद (1974). *ए स्टूडेंट हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया,* दिल्ली: द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड.

पाण्डेय, के.पी. (2011), *शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन,* वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.

मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेण्ट, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली,

नेशनल पॉलिसी ऑफ एजुकेशन. 1986.

मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेण्ट, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, *एन.सी.एफ. 2005.*

यादव, बृजेश (2012). *अवेयरनेस ऑफ द प्रास्पेक्टिव टीचर्स टूवर्ड कॉन्टीनिवस एण्ड कॉम्प्रीहेन्सिव इवैल्यूएशन.* अप्रकाशित लघुशोध, बी.एच.यू., वाराणसी

राव, एम.पी. एवं राव, पी. (2004) *इफेक्टिवनेस ऑफ कॉन्टीनिवस एण्ड कॉम्प्रीहेन्सिव*

इवैल्यूएशन ऑफ द इवैल्यूएशन प्रैक्टिस ऑफ टीचर्स. Retrived March 14, 2013- from http://conference.nic.edu.

रिपोर्ट ऑफ द सेकेण्डरी एजुकेशन कमीशन (1952–53) मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन एण्ड साइन्टिफिक रिसर्च, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, 1958.

रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन (1964–66). *एजुकेशन फार नेशनल डेवलपमेण्ट. गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया.* मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन.

सिंहल, पूजा (2011). *कॉन्टीनिवस एण्ड कॉम्प्रीहेन्सिव इवैल्यूएशन ए स्टडी ऑफ टीचर्स परसेप्शन.* Retrived March 14- 2013 from http://conference.nic.edu.

सी.बी.एस.ई. (2009) *टीचर्स मैनूअल ऑन कॉन्टीनिवस एण्ड कॉम्प्रीहेन्सिव इवैल्यूएशन.* Retrived March 27- 2013 from http://cbsc.nic.in/cce/ccemanual.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 2, अगस्त 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

विद्यालय में अनुशासन एवं दंड की प्रकृति और स्वरूप

कंचन शर्मा*

सारांश

एक बालक भी मानव होने के नाते गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकारी है, जिसके लिए आवश्यक है कि उसे उचित, खुशहाल, ज्ञानवर्धक वातावरण के साथ-साथ उन सभी अनुभवों से दूर रखा जाए जो उसे किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक या संवेदनात्मक पीड़ा पहुचाते हों। प्रस्तुत आलेख द्वारा विद्यालयों में जारी 'दंड' एवं 'अनुशासन' की प्रकृति, स्वरूप व आपसी संबंधों को समझने की कोशिश की गई है। मुख्य रूप से आलेख तीन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए लिखा गया है। पहला, छात्राओं को विद्यालय के भीतर मिलने वाली सजा (दंड) के स्वरूप व प्रकृति की पड़ताल करना। दूसरा, छात्राओं को मिलने वाली सजा (दंड) के कारणों का विश्लेषण करना व शारीरिक व मानसिक दंड के प्रभावों का अवलोकन करना। तीसरा, विद्यालय में कार्यरत अध्यापक व अध्यापिकाओं के दृष्टिकोण से अनुशासन के अर्थ का विश्लेषण करना व उनके 'अनुशासन' बनाए रखने के उपायों का पता लगाना।

प्रस्तावना

बालक के लिए विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहां आकर वह न केवल भविष्य के जीवन की नींव को मजबूत करता है बल्कि विद्यालय ऐसा स्थान भी है जो उसके व्यक्तित्व के निर्माण करने के साथ-साथ इस संसार या समाज को समझने का दृष्टिकोण भी विकसित करता है। एक बालक अपने जीवन के आंरभिक महत्वपूर्ण वर्ष विद्यालय में बीताता है।

*एम.एड. प्रशिक्षार्थी, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (शिक्षा विभाग), दिल्ली विश्वविद्यालय,
ई-मेल : kannu.kanchansharma@gmail.com

विद्यालय का सकारात्मक वातावरण जहां उसे भविष्य के प्रति खुशहाल व सकारात्मक दृष्टिकोण देता है, वही विद्यालय का हिंसक व नकारात्मक वातावरण उसके भविष्य को व संसार को देखने के नजरिए को काफी नकारात्मक या उदासीन बना देता है। एक बालक भी मानव होने के नाते वयस्कों की भांति ही गरिमापूर्ण व सुरक्षित जीवन जीने का अधिकारी है। इस अधिकार की समझ विद्यालय के वातावरण के साथ ही विकसित हो जाना आवश्यक है। इस संदर्भ में विद्यालयों से शारीरिक हिंसा व मानसिक उत्पीड़न को समाप्त करना अति आवश्यक है। किलमिक के अनुसार विद्यालय का अर्थ ऐसे सुरक्षित स्थान से है जहां विद्यार्थी अपनी शैक्षिक व सहशैक्षिक गतिविधियों की पूर्ति करते हैं। बच्चे के पूर्ण विश्वास के लिए आवश्यक है : स्वस्थ व स्वतंत्र, हिंसा व शोषण से मुक्त पर्यावरण। ऐसे वातावरण की स्थापना के लिए आवश्यक है शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न को पूर्ण रूप से समाप्त किया जाए। परंतु विद्यालय के भीतर शारीरिक व मानसिक दंड एक गंभीर समस्या है। शारीरिक दंड को परिभाषित करते हुए शांता सिन्हा कहती हैं ''शारीरिक दंड को शारीरिक हिंसा भावनात्मक उपेक्षा, घृणा व लिंग, जाति, शारीरिक व मानसिक असमानता आदि के आधार पर किए गए भेदभाव के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' ये शारीरिक दंड, भेदभाव व मानसिक उपेक्षा न केवल बालक को विद्यालय के प्रति उदासीन कर देता है बल्कि बालक मानव गरिमा के अधिकार पर भी प्रहार करता है।

अत: बालक को किसी भी प्रकार के हिंसक व्यवहार व मानसिक उत्पीड़न के अनुभवों से दूर रखने हेतु अनेक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठन एकजुट होकर एक आवाज में बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा की मांग करते हैं। मानव होने के नाते सभी के पास गरिमापूर्ण व सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार है। इस नाते बच्चों के अधिकारों को कानूनी आधार मानव अधिकार से प्राप्त हो जाता है। इस अर्थ में सभी प्रकार का शारीरिक दंड व मानसिक उत्पीड़न मानव अधिकारों पर प्रहार है। बच्चों के अधिकारों की रक्षा हेतु भारतीय संविधान में कई प्रावधान किये गए हैं, जैसे भारतीय संविधान का भाग 3, अनुच्छेद 21, गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार प्रदान करता है। अर्थात बालक भी मानव होने के नाते सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार रखता है। इसी अधिकार में भाग 3, अनुच्छेद 21(1) जोड़ा गया जो 6–14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा का अधिकार यह भी व्यवस्था करता है कि ''विद्यालय के भीतर कोई भी बच्चा (6–14 वर्ष) शारीरिक हिंसा या

मानसिक उत्पीड़न का शिकार न हो।'' यह अधिकार इसलिए दिया गया क्योंकि शिक्षा गरिमापूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए आवश्यक जरूरत है, इसी के माध्यम से मानव अपने जीवन को सार्थक बना पाता है। इसके साथ ही बालक को हिंसा से मुक्त रखने के लिए हिंसा से मुक्त करने के लिए विद्यालय को हिंसा व उत्पीड़न से मुक्त रखने का भी प्रावधान किया गया। इसके अलावा संविधान का भाग 3, अनुच्छेद 15(3), राज्य को अनुमति प्रदान करता है कि वह बच्चों की सुरक्षा व उनके लिए विशेष सुविधाओं की व्यवस्था करे। संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों द्वारा भी बाल अधिकारों की सुरक्षा का प्रयास किया गया है, जैसे संविधान का भाग 4, अनुच्छेद 39(5) राज्यों को निर्देश देता है कि इस दिशा में विशेष कदम उठाए जाएं जिससे बाल्यावस्था में कोई भी बच्चा उत्पीड़न, उपेक्षा व दुर्व्यवहार का शिकार न हो। इसी प्रकार संविधान का भाग 4, अनुच्छेद 39(6), राज्यों को निर्देश देता है कि बच्चों को वे सभी सुविधाएं व अवसर प्रदान किए जाएं जो उनके स्वस्थ विकास, स्वतंत्र गरिमा की रक्षा में सहायक हों। बाल्यावस्था, युवावस्था को शोषण से सुरक्षा प्रदान की जाए। भारत में इन अधिकारों व निर्देशों के बावजूद स्थिति गंभीर बनी हुई है। आज भी लाखों बच्चे शिक्षा से हीन बाल मजदूर के रूप में हिंसा व शोषण का शिकार हो रहे हैं। आज भी हजारों बच्चे भूख से काल को गले लगा रहे हैं या अनिमिया, अपंगता, पोलियो आदि जानलेवा बीमारियों से पीड़ित हैं। यह समस्याएं न केवल भारत में गंभीर रूप लिए हुए हैं बल्कि संसार के कई अन्य देशों में भी व्याप्त हैं। इसी कारण विश्वस्तर पर भी कई प्रयास किए जा रहे हैं ताकि बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु Convention on the Right of Child (CRC), जिसे 1992 में भारत द्वारा, 193वां देश के रूप में स्वीकार किया गया, इसके साथ ही यह सुनिश्चित किया गया कि ''राज्य अत्याचार, यातना और अन्य दूसरी हिंसक या अपमानजनक सजा या व्यवहार से (अनुच्छेद 37) व सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक हिंसा से रक्षा करेगा (अनुच्छेद 19) और यह सुनिश्चित करेगा कि विद्यालय बच्चों के सम्मान व मानव गरिमा को ध्यान में रखते हुए अनुशासन का प्रबंधन करेगा।'' Convention on the Right of Child (CRC), सशक्त रूप से सिफारिश करती है कि ''राज्य सरकार बच्चों के अधिकारों की रक्षा हेतु, बच्चों को अनुशासित करने के वैकल्पिक मार्गों पर विद्यालयी शिक्षकों, माता-पिता व अन्य वे लोग जो बच्चों के लिए या बच्चों के साथ काम करते हैं उन्हे शिक्षित करें व यह सुनिश्चित करे कि परिवारों से, विद्यालयों व अन्य संगठनों से शारीरिक दंड व मानसिक उत्पीड़न पूर्ण रूप से बहिष्कृत हों।'' संयुक्त राष्ट्र संघ में बच्चों के अधिकारों

की रक्षा हेतु बने समझौते पर भारत द्वारा हस्ताक्षर यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि 'कोई भी बच्चा उत्पीड़न, क्रुरता, अमानवीय व्यवहार या अमानवीय दंड का भोगी नहीं होगा।'

परंतु दूसरी तरफ 'अनुशासन' विद्यालय के प्रमुख तत्व के रूप में देखने के साथ-साथ इसे विद्यार्थियों की शैक्षिक सफलता के लिए अति आवश्यक तत्व माना जाता है व शारीरिक दंड को सदैव 'अनुशासन' के साथ जोड़ दिया जाता है। यहां चिंतनीय प्रश्न यह है कि 'अनुशासन' क्या है जिसे बनाए रखने के लिए हिंसात्मक व्यवहारों को जारी रखा जा रहा है।

रोसन (1997) का कहना है कि ''अनुशासन' एक ऐसे ज्ञान का संग्रह है जो चरित्र, आत्मनियंत्रण, सक्षमताओं का विकास करता है या ऐसा नियंत्रणकारी व्यवहार या नियमों का संग्रह है जो दंड की व्यवस्था करता है।''

वहीं केमरन (2006) अनुशासन को परिभाषित करते हुए कहते हैं ''विद्यालय 'अनुशासन' अर्थात ऐसी नीतियां व गतिविधियां हैं, जिसका निर्णय विद्यालय द्वारा विद्यार्थियों के अनचाहे व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए लिया जाता है। इसमें मुख्यत: स्कूल के नियमों के पालन पर बल, सुरक्षा विधि, शारीरिक दंड और कक्षा के भीतर अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों को नियंत्रित करने की विधियां शामिल होती हैं।''

विद्यालय के भीतर विद्यालय के 'नियम-कानूनों' को बनाए रखने के लिए 'अनुशासन' अति आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है परंतु 'अनुशासन' को बनाए रखने के लिए जारी उपायों पर राबिन्सन (2005) प्रश्न करते हैं व शारीरिक व मानसिक दंड की हानियों को रेखांकित करते हैं जैसे– ''भगोड़ापन, अध्यापकों से डर की भावना, प्रश्न करने की जिज्ञासा का कम होना, नि:सहाय महसूस करना, उपेक्षित व अकेलापन महसूस करना, क्रोध, दुर्व्यवहार व हिंसक गतिविधियों के प्रति आकर्षण आदि।''

निसंदेह, अपमान, उपेक्षा, हिंसक व्यवहार, मानसिक उत्पीड़न, भावनात्मक उपेक्षा बच्चों के आत्मविश्वास में कर्मी के कारण बनते हैं साथ ही प्रश्न करने की उनकी जिज्ञासु प्रवृति को भी खत्म करते हैं। शारीरिक दंड बच्चों में न केवल विद्यालय व शिक्षकों के प्रति द्वेष व क्रोध का प्रवाह करता है बल्कि विद्यालयों से अलगाव की भावना का भी तेजी से प्रसार करता है, इसके साथ ही ''जो अध्यापक शांति के प्रति रूझान नहीं रखते वे अनजाने में हिंसा का दुष्प्रचार करने में अहम भूमिका निभाते हैं, वह समस्या को हल

करने की रणनीति के रूप में हिंसा को ही अनुकरणीय बना देते हैं।''

शारीरिक हिंसा व दंड के निवारण हेतु शांता सिन्हा सकारात्मक अनुशासन पर बल देते हुए कहती हैं कि ''आज आवश्यकता शारीरिक दंड के स्थान पर सकारात्मक अनुशासन को स्थान देने की है। सकारात्मक अनुशासन बच्चों के साथ अंतर्क्रिया पर बल देता है, उनका आदर करना व उन्हें दंड देने पर बल देता है।''

विद्यालयों में दंड व अनुशासन के मध्य इस प्रकार के संबंध की पड़ताल करने हेतु व विद्यार्थियों में दंड की स्थिति व विद्यालय में 'अनुशासन' व दंड की प्रकृति व संबंध के विश्लेषण हेतु, आंकड़ों का संकलन हेतु रा.बा.व.विद्यालय, रूप नगर नं.1, दिल्ली 110007 का प्रयोग किया गया। आलेख को सारगर्भित बनाने हेतु साक्षात्कार विधि, प्रश्नावली व अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया। अध्यापकों से हुई बातचीत, विद्यालय संरचना, कक्षा वातावरण, अध्यापकों का व्यवहार व छात्राओं के अनुभवों के आधार पर दंड की प्रकृति व 'अनुशासन' के अर्थ व इनके आपसी संबंध को समझने का प्रयास किया गया।

आंकड़ों के संकलन हेतु विद्यालय से कुल 60 छात्राओं का चयन किया गया। 20 छात्राएं सातवीं कक्षा, 20 छात्राएं नवमीं कक्षा से, 20 छात्राएं ग्यारहवीं कक्षा से ली गईं। सभी छात्राओं से साक्षात्कार व प्रश्नावली फार्म भरवाए गए व बातचीत के जरिए दंड संबंधित अनुभवों पर बात की गई। इसी प्रकार विद्यालय से 10 अध्यापकों का चयन किया गया। बालिका विद्यालय होने के कारण पुरुष अध्यापकों की संख्या कम थी। अत: 8 महिला अध्यापकों का चयन किया गया। अध्यापकों से साक्षात्कार व बातचीत के जरिए 'अनुशासन' पर समझ विकसित की गई।

दंड के प्रकार	**छात्राओं की प्रतिक्रिया (संख्या में)**	**प्रतिशत**
चिकोटी काटना	5	8%
बाल खिंचना	14	23%
हाथ पर फट्टे मारना	29	48%
कान मरोड़ना	34	56%
पीठ पर मारना	23	38%
मैदान में चक्कर लगवाना	43	71%

(क्रमश:)

गाल पर थप्पड़ मारना	50	83%
शौचालय न जाने देना	21	35%
कक्षा के बाहर खड़ा करना	51	85%
मुर्गा बनाना	11	18%
मेज पर खड़ा करना	15	25%
हाथ ऊपर करके खड़ा करना	55	91%
बांह मरोड़ना	6	10%

आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय में दंड के तौर पर मुख्य रूप से हाथ ऊपर करके खड़ा करना (91%), कक्षा के बाहर खड़ा करना (85%), गाल पर थप्पड़ मारना (83%), मैदान में चक्कर लगवाना (71%), कान मरोड़ना (56%) का अधिक प्रयोग किया जाता है।

मानसिक उत्पीड़न हेतु प्रयुक्त शब्द	**छात्राओं की प्रतिक्रिया (संख्या में)**	**प्रतिशत**
पागल	37	61%
उल्लू	9	15%
इडियट	38	63%
कामचोर	17	28%
झल्ली	54	90%
नालायक	30	50%

साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़ें बताते है कि छात्राओं को बेइज्जत करने व दबाव बनाने के लिये कई बार हिंसा का प्रयोग न करके इस प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। आंकड़ें बताते हैं कि विद्यालय विशेष में झल्ली शब्द (90%) को सबसे ज्यादा प्रयोग में लाया जाता है। इसके पश्चात् इडियट (63%) व नालायक (50%) शब्द का भी बड़ी मात्रा में प्रयोग जारी है। जबकि कानून कहता है कि ऐसा कोई भी शब्द जो बालक की गरिमा को ठेस पहुंचाए या उसपर किसी प्रकार का मानसिक दबाव बनाए वह बाल अधिकार पर प्रहार माना जाएगा।

दंड दिए जाने के कारण	छात्राओं की प्रतिक्रिया (संख्या में)	प्रतिशत
गृहकार्य न करने पर	43	71%
कक्षा कार्य न करने पर	22	36%
परीक्षा में कम नंबर लाने पर	12	20%
शोर मचाने पर	49	81%
यूनिफार्म में कमीं रहने पर	33	55%
प्रश्न का उत्तर ठीक न देने पर	16	26%
किताब या कापी न लाने पर	25	41%
विद्यालय लेट आने पर	38	63%

आंकड़ों से जो प्रमुख बात उभर कर आई है वह है कि अध्यापकों के दृष्टिकोण में जो अनुशासन है उसमें कमीं होना छात्राओं के दंड का कारण बना। जैसे 10 अध्यापकों में से 9 ने माना कि 'समय पर विद्यालय आना, कक्षा में शांत बैठना, गृहकार्य पूरा करना 'अनुशासन' है। वहीं आंकड़े बताते हैं कि दंड के कारणों में कक्षा में शोर मचाना (81%) गृहकार्य न करके लाना (71%), विद्यालय लेट आना (63%), यूनिफार्म में कमीं होना (55%), प्रमुख तौर पर दंड का कारण बनते हैं।

अवलोकन में पाया कि प्रत्येक सुबह विद्यालय समय (7:30 बजे) के बाद आने वाली छात्राओं को अलग खड़ा कर प्रार्थना के पश्चात् मैदान में चक्कर लगवाए जाते थे व उन्हें देर तक मैदान में खड़ा रखा जाता है। परीक्षा के दिनों में लेट आने वाली छात्राओं को आधा घंटा और अधिक पेपर नहीं दिया जाता था ताकि वह सबक सीख सके। इस प्रकार विद्यालय में शारीरिक दंड के साथ मानसिक उत्पीड़न दोनों जारी हैं। इस समस्या पर अध्यापकों का कहना है कि विद्यालय में 'अनुशासन' बनाए रखने के लिए 'नियंत्रण' होना जरूरी है व अनुशासन विद्यालय का अतिआवश्यक तत्व है। आंकड़ों से एक तथ्य जो और उभर कर आया है कि छोटी कक्षाओं की छात्राओं को शारीरिक दंड अधिक मात्रा में दिया जाता है। वहीं बड़ी कक्षाओं में शारीरिक दंड कम परंतु मानसिक दबाव अधिक बनाकर रखा जाता है।

''एक दिन विद्यालय में काजल लगा कर आने के कारण मेरी अध्यापिका ने मेरी पिटाई की। इसके कुछ दिन बाद PTM वाले दिन अध्यापिका ने मेरी माँ से मेरे

चरित्र व व्यवहार से संबंधित कई गलत बातें कहीं व कहा कि मेरा मन पढ़ाई में न होकर फैशन में जा रहा है। अध्यापिका ने एक बार भी ये नहीं बताया कि मैं संगीत प्रतियोगिता में प्रथम आई हूँ। अध्यापिका की शिकायतों के कारण मेरी माँ मुझे आगे नहीं पढ़ाना चाहती। PTM वाले दिन मेरी घर जाकर बहुत पिटाई भी हुई हमेशा ताने सुनने को मिलते हैं।''

दिनांक 10.12.2012

छात्रा 11वीं कक्षा

अध्ययन में जो बात सबसे ज्यादा उभर कर आई है वह है PTM की छात्राओं के विरुद्ध प्रयोग। छात्राओं की मुख्य समस्या यह है कि उनकी हर छोटी गलती के कारण उनके माता-पिता को बुलाकर शिकायत की जाती है। जिसके कारण न केवल विद्यालय में लज्जित होना पड़ता है बल्कि घर में पिटाई भी होती है। अध्ययन में 60 छात्राओं में से 32 ने कहा उन्हें PTM वाले दिन डर लगता है व इस दिन वे विद्यालय आना पसंद नहीं करती। इस ओर ध्यान देने की जरूरत है कि जहां NCPCR शारीरिक दंड व मानसिक उत्पीडन को कम करने के लिए PTM व SMC जैसी व्यवस्था पर बल दे रहा है, वही ये व्यवस्थाएं भी छात्राओं के विरुद्ध प्रयोग में लाई जा रही हैं।

अध्यापिकाओं से जब अनुशासन संबंधित परेशानियों पर चर्चा की गई तो उन्होनें कई परेशानियों का जिक्र किया जैसे कक्षा में छात्राओं की संख्या का अधिक होना। जिसके कारण न केवल छात्राओं को संभालने में मुश्किल आती है बल्कि शिक्षण में भी परेशानी आती है। दूसरा, अध्यापकों को न केवल अध्यापन का कार्य करना होता है बल्कि प्रशासनिक कार्यों का जिम्मा भी उन्हीं पर होता है। तीसरा, छात्राओं का माता-पिता का उनके प्रति गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार, छात्राओं की प्रत्येक गलती के लिए कक्षा अध्यापिका को दोषी ठहराया जाता है। चौथा, निर्धारित समय में पाठ को समाप्त करवाना। अध्यापकों के पास इतनी स्वतंत्रता नहीं होती कि वह किसी पाठ को उसकी आवश्यकता के अनुसार ज्यादा समय लेकर समाप्त करवा सकें। उन्हें एक निश्चित समय में कोर्स पूरा करवाना पड़ता है। अध्यापकों की समस्या अपने स्तर पर उचित है क्योंकि कक्षा व विद्यालय का खुशहाल वातावरण व शिक्षण इन समस्याओं से प्रभावित होता है। अध्यापकों की समस्याएं उचित हैं परंतु इन समस्याओं को शारीरिक दंड दिए जाने का आधार नहीं माना जा सकता। एक अध्यापक की समस्या का कारण एक बालक नहीं

होता। उपरोक्त समस्याएं गंभीर हैं परंतु शारीरिक दंड व मानसिक उत्पीड़न से छात्राओं में उत्पन्न होने वाली कुंठा व आक्रोश को अनदेखा नहीं किया जा सकता। शारीरिक दंड छात्राओं के आत्मविश्वास के स्तर में कमी, अध्यापिकाओं के प्रति घृणा, विद्यालय के प्रति अलगाव व कक्षा में सहभागिता की कमी का कारण बन रहा है।

निष्कर्ष

सारांश रूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बालाधिकार की रक्षा व हिंसा से बचाव के लिए अनेक प्रयास होने के पश्चात भी विद्यालयों में जारी शारीरिक दंड एक गंभीर समस्या है। यह समस्या इसलिए बनी हुई है क्योंकि अध्यापकों द्वारा 'अनुशासन' को बहुत महत्व दिया जा रहा है। अध्यापकों की नजर में जो अनुशासन है उसमें थोड़ी कमीं होना दंड का कारण बन रही है। यहां जो प्रश्न विचारणीय है वह है कि छात्राओं के विरूद्ध PTM का प्रयोग। PTM का प्रयोग छात्राओं की शैक्षिक या अशैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु न होकर मात्र उनकी शिकायतों को बताने का व कक्षा में समक्ष उन्हें बेईज्जत करने का अवसर बन गया है। साक्षात्कार के दौरान, मुख्यत: बड़ी कक्षाओं की छात्राओं ने कहा कि इस दिन वे स्कूल आना पसंद नहीं करतीं। अध्ययन से जो तथ्य उभरा है वह यह है कि शारीरिक व मानसिक हिंसा को मात्र कानून बना देने से समाप्त नहीं किया जा सकता है अपितु आवश्यकता है कि अध्यापकों व छात्र-छात्राओं के मध्य प्रेमपूर्ण व लोकतांत्रिक संबंध मजबूत किया जाए। इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक वर्ग शिक्षा को मात्र पाठ्यक्रम पूरा करवाने तक संकुचित न करे अपितु शिक्षा के माध्यम से छात्र-छात्राओं में अहिंसा, सहानुभूति, प्रेम, दया, शांति आदि जैसे मानवीय व्यवहारों का भी विकास करे। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक वर्ग की भी इन मूल्यों में अटूट आस्था हो।

संदर्भ

किलमिक, सेंगुल (2009) *'टीचर्स परसेपसंस ओन कोरपोरल पनीसमेंट ऐज ऑफ डिसिपीलिन इन एलीमेंटरी स्कूल'* दी जर्नल ऑफ इंटर नेशनल स्कूल टीचर्स।

सिन्हा शान्ता *'टुवर्डस दी कलचर ऑफ नोन वाइलेंस इन ओल इंस्टिट्यूट, ए स्टडी बाइ एनसीपीसीआर'*

यूनिसेफ (2009), *कन्वेनशन ओन दी राइट ऑफ चाइल्ड,* http://www.unicef.org/crc/

रोसेन (1997), *स्कूल डिसिपलीन:बेस्ट प्रेकटिस फोर एडमिनीस्ट्रेटर,* केलीफोरनिया: कोरविन प्रेस।

केमरन (2006), *'मेनेंजिंग स्कूल डिसिपलीन एण्ड इंप्लीकेशन फोर स्कूल शोसल वर्कर: ए रिव्यु ऑफ लिटरेचर'* नेशनल एशोसिएसन ऑफ शोसल वर्कर।

रोबिन्सन (2005), *'चेंजिंग बिलिफस अबाउट कोरपोरल पनिशमेंट:इनक्रिजिंग नोलेज अबाउट इनइफेक्टीवनेस टू बिल्ड मोर कनसिसटेंस मोरल एण्ड इनफोरमल बिलीव्स'* ए जनरल ऑफ बिहेवियर ऐजुकेशन।

एनसीएफ, *एजुकेशन फोर पीस,* नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क: नई दिल्ली।

एनसीटीई (2009), *नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फोर टीचर एजुकेशन: टूवडर्स प्रोफेशनल एंड हुमन टीचर,* एनसीटीई, नई दिल्ली।